प्रशिक्षण पुस्तिका

यू०एन० इन्वायरनमेंट–जी०ई०एफ० परियोजना के अन्तर्गत

पर्वतीय क्षेत्रों में आय सृजन हेतु पारम्परिक फसलों की उन्नत उत्पादन, प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धन तकनीकी

भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
(आईएसओ 9001: 2015 प्रमाणित संस्थान)
अल्मोड़ा–263601(उत्तराखण्ड)

द्वारा आयोजित

यू०एन०इन्वायरनमेंट–जी०ई०एफ० परियोजना
"कृषि जैव–विविधता के संरक्षण एवं उपयोग द्वारा कृषि क्षेत्र की मुख्य धारा में लाना, बदलती जलवायु से बचाना एवं पारिस्थितिकी सेवाऐं सुनिश्चित करना"

के अन्तर्गत

प्रशिक्षण कार्यक्रम

पर्वतीय क्षेत्रों में आय सृजन हेतु पारम्परिक फसलों की उन्नत उत्पादन, प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धन तकनीकी

(दिनांक 1–6 सितम्बर, 2021)

मार्गदर्शन
डा० लक्ष्मी कांत
निदेशक, भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

प्रशिक्षण कार्यक्रम समन्वयक
अनुराधा भारतीय
कुशाग्रा जोशी
जितेन्द्र कुमार
जे० पी० आदित्य

उद्धरण

भारतीय अनुराधा, जोशी कुशाग्रा, कुमार जितेन्द्र एवं आदित्य जे० पी० (2021) प्रशिक्षण पुस्तिका,पर्वतीय क्षेत्रों में आय सृजन हेतु पारम्परिक फसलों की उन्नत उत्पादन, प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धन तकनीकी, भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा–263 601, उत्तराखण्ड, भारत, पृष्ठ 91

यू०एन०इन्वायरनमेंट–जी०ई०एफ० परियोजना "कृषि जैव विविधता के संरक्षण एवं उपयोग द्वारा कृषि क्षेत्र की मुख्य धारा में लाना, बदलती जलवायु से बचाना एवं पारिस्थितिकी सेवाऐं सुनिश्चित करना" के अन्तर्गत भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा द्वारा वर्ष 2021 में प्रकाशित

संकलन एवं संपादन

अनुराधा भारतीय, कुशाग्रा जोशी, जितेन्द्र कुमार एवं जे० पी० आदित्य

©2021, भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

संपादन सहयोग

हेमलता जोशी एवं देवेन्द्र सिंह कार्की

प्रकाशक

निदेशक, भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान अल्मोड़ा–263 601, उत्तराखण्ड, भारत

दूरभाषः 91–5962–230208 (कार्यालय) 91–5962–230130 (निवास)
फैक्सः 91–5962–231539
वेबसाइटः http://www.vpkas.icar.gov.in
ईमेलः director.vpkas@icar.gov.in, vpkas@nic.in

विषय–सूची

क्रम सं.	शीर्षक	पृष्ठ सं.
1.	कृषकों के लिए लाभकारी बौद्धिक सम्पदा के अधिकार *लक्ष्मीकान्त एवं अनुराधा भारतीय*	1–7
2.	उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु कदन्न एवं कूट फसलोत्पादन की उन्नत तकनीकी *डी.सी. जोशी एवं एम.एस. भिंडा*	8–17
3.	उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु धान उत्पादन की उन्नत तकनीकी *जे. पी. आदित्य, अनुराधा भारतीय, मनोज परिहार एवं चन्दन महाराणा*	18–27
4.	पारंपरिक फसलों का प्रसंस्करण एवं मूल्यवर्धन *दीपिका गोस्वामी*	28–37
5.	उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु दलहन उत्पादन की उन्नत तकनीकी *अनुराधा भारतीय, जे. पी. आदित्य एवं हेमलता जोशी*	38–42
6.	पारम्परिक फसलों में रोग प्रबन्धन *जीवन बी, चन्दन महाराणा, जे.पी. गुप्ता एवं के.के. मिश्रा*	43–49
7.	ग्रामीण रोजगार उन्नयन का सफल मॉडल–आजीविका *कैलाश चंद्र भट्ट*	50–54
8.	पारम्परिक फसलों का बीजोत्पादन, आय सृजन एवं सामुदायिक बीज बैंकों द्वारा संरक्षण *राजेश खुल्बे*	55–58
9.	पारम्परिक फसलों में कीट प्रबन्धन *जे. पी. गुप्ता*	59–68
10.	पारम्परिक फसलों के मूल्यवर्धित उत्पाद *शेर सिंह एवं श्याम नाथ*	69–74
11.	पारंपरिक फसलों की विपणन रणनीतियाँ *कुशाग्रा जोशी*	76–86
12.	पर्वतीय कृषि में कटाई उपरांत प्रौद्योगिकी एवं प्रसंस्करण केन्द्र की प्रात्यक्षिक जानकारी शेर सिंह, श्याम नाथ, जितेन्द्र कुमार, हितेष बिजारणिया एवं जयदीप कुमार बिष्ट	87–91

कृषकों के लिए लाभकारी बौद्धिक सम्पदा के अधिकार

लक्ष्मीकान्त एवं अनुराधा भारतीय
भाकृअनुप–वि.प.कृ.अनु.सं, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

बौद्धिक संपदा संरक्षण किसी भी देश के आर्थिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। बौद्धिक सम्पदा के अधिकार अनुसन्धान एवं व्यापार के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के साथ बड़े पैमाने पर जनता को भी लाभान्वित करते हैं और तकनीकी प्रगति में भी उत्प्रेरक के रूप में कार्य करते हैं। ज्ञान और सूचना प्रौद्योगिकी के युग के आगमन के साथ वर्तमान में बौद्धिक सम्पदा के महत्व में अत्यधिक वृद्धि हुई है जिसके फलस्वरूप बौद्धिक संपदा और उससे सम्बन्धित अधिकार अन्य चल एवं अचल सम्पत्तियों के समान बहुमूल्य माने जाने लगे हैं, अतः इनके संरक्षण की भी नितान्त आवश्यकता है। बौद्धिक सम्पदा का कानूनी संरक्षण गहन वैश्वीकरण और दुनिया भर के देशों के बीच होने वाले व्यापार के लिए बहुत आवश्यक है। वर्तमान में अंतरराष्ट्रीय व्यापार और वाणिज्यिक दायित्व बौद्धिक संपदा से सम्बन्धित प्रतिबद्धताओं पर अत्यधिक निर्भर हो गए हैं। भारत बौद्धिक संपदा अधिकारों की सुरक्षा की दिशा में निरन्तर प्रयासरत है तथा वर्तमान में बौद्धिक संपदा अधिकारों की सुरक्षा के लिए भारत में एक वैधानिक, प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था स्थापित की गई है।

"बौद्धिक सम्पदा" शब्द से अभिप्राय ऐसी वस्तुओं से है जो किसी व्यक्ति की बुद्धि एवं विवेक से उत्पन्न होती हैं तथा यह ज्ञान, विचार और प्रतिभा की एक मिली जुली बाह्य अभिव्यक्ति है। बौद्धिक सम्पदा के मुख्य विषय सामान्यतः लेखकों की रचनायें एवं आविष्कारकर्ताओं के आविष्कार माने जाते हैं और यह किसी चल अथवा अचल सम्पत्ति के समान ही महत्वपूर्ण हैं, जिसका उपयोग उसके धारक द्वारा इच्छानुसार सम्पत्ति की तरह किया जा सकता है। अपनी विवेकपूर्ण क्षमता के प्रयोग से जब कोई व्यक्ति किसी मौलिक कृति का सृजन करता है तो वह अपनी इच्छानुसार उसके व्ययन का अधिकार रखना चाहता है और उसके द्वारा की गई व्यवस्था से भिन्न कोई प्रयत्न उसके अधिकारों पर अतिक्रमण माना जाता है। सृजनक को उसके बौद्विक श्रम के लिए दिए जाने वाले ये विशिष्ट अधिकार अधिकाधिक लोगों को ऐसे सृजन में अपना समय एवं धन निवेश करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। विश्व बौद्विक संपदा संगठन के अनुसार बौद्धिक संपदा के अंतर्गत साहित्य, कलात्मक तथा वैज्ञानिक कार्य, कलाकार की कला का प्रदर्शन, डिजाइन, ट्रेडमार्क, सेवा चिन्ह एवं व्यापारिक नाम तथा पदनाम व औद्योगिक, वैज्ञानिक, साहित्यिक एवं कलात्मक क्षेत्रों में बौद्धिक क्रिया–कलापों से संबंधित अन्य सभी अधिकार सम्मिलित किये जाते हैं। विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) में बौद्धिक संपदा अधिकारों के व्यापार संबंधी पहलुओं (ट्रिप्स) पर समझौते के बाद, ज्यादातर देश बौद्धिक संपत्ति के संरक्षण के लिए कुछ न्यूनतम मानकों के प्रावधानों को मानने हेतु प्रतिबद्ध हैं। बौद्धिक सम्पदा अधिकार का मुद्दा विश्व व्यापार संगठन द्वारा अंतरराष्ट्रीय मंच पर ट्रिप्स के माध्यम से लाया गया था। भारत ने बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के व्यापार संबंधी पहलुओं का हस्ताक्षर कर्ता होने के नाते अपने बौद्धिक सम्पदा संरक्षण के लिए सुस्पष्ट प्रशासनिक और कानूनी ढांचा विकसित किया है। भारत में समय–समय पर बौद्धिक सम्पदा के अधिकार से संबंधित अधिनियम पारित किये गए हैं जैसे कि पेटेंट अधिनियम, 1970; व्यापार चिन्ह अधिनियम, 1999; डिजाइन अधिनियम 2000; भौगोलिक संकेत (पंजीकरण और संरक्षण)

अधिनियम, 1999; कॉपीराइट अधिनियम, 1957; पौध किस्मों और किसान अधिकारों का संरक्षण अधिनियम, 2001; सेमीकंडक्टर एकीकृत परिपथ अभिन्यास डिजाइन अधिनियम, 2000; और जैव विविधता अधिनियम, 2002। भारत में ट्रिप्स समझौते के अनुरूप बौद्धिक सम्पदा अधिकार प्रदान करने के लिए एक मजबूत, न्यायसंगत और गतिशील बौद्धिक सम्पदा के अधिकार व्यवस्था का प्रबंध है। ये बौद्धिक संपदा अधिकार (आईपीआर) विशेष रूप से विकासशील देशों में कृषि के विकास के लिए महत्वपूर्ण हैं। ऊपर उल्लेखित कई आईपीआर कृषि क्षेत्र के लिए भी उपयुक्त हैं तथा इन्हें कृषि में उत्पादित वस्तुओं या सेवाओं के संरक्षण के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। ये मुख्य रूप से पेटेंट, पादप प्रजनक अधिकार, ट्रेडमार्क, भौगोलिक संकेत और व्यापारिक रहस्य हैं। इसके अलावा कृषि उपयोगी मशीनों को बनाने में प्रयोग किये गए ले–आउट डिजाइन को भी आईपीआर के अंतर्गत संरक्षण प्राप्त है। सामान्यतः विश्व के सभी देशों ने बौद्धिक सम्पदाओं के संरक्षण के लिए कानून बना रखा है, जिसे उस देश का बौद्धिक सम्पदा संरक्षण कानून कहते हैं एवं इस कानून के तहत सम्पत्ति के मालिक को यह अधिकार है कि एक निश्चित समय तक अपनी बौद्धिक सम्पदा का बाजारीकरण कर आर्थिक लाभ उठा सके साथ ही यह सम्पदा आम आदमी की जरूरत के अनुसार उस तक पहुँच सके। निम्नलिखित दो कारणों से बौद्धिक सम्पदाओं के संरक्षण के लिए बने कानून उपयोगी हैं:– अ) रचनाकार को एक संवैधानिक, नैतिक और आर्थिक अधिकार प्रदान करने के लिये ताकि वो अपनी रचना को ज्यादा से ज्यादा लोगों तक पहुँचाते हुए ज्यादा से ज्यादा पारितोशिक पा सक, ब) रचनात्मकता को बढ़ावा, विस्तार और फेयर ट्रेड को बढ़ावा देने के लिये, जो की देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध हो।

बौद्धिक सम्पदा अधिकारों को दो मुख्य क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है –

औद्योगिक सम्पत्ति–औद्योगिक सम्पत्ति का संरक्षण विशेष रूप से व्यापार चिन्ह (जो एक उपक्रम के माल या उसकी सेवाओं को दूसरे उपक्रमों के माल एवं उनकी सेवाओं से अलग करता है) और भौगोलिक संकेत (जो एक निश्चित स्थान में उत्पादित माल के रूप में अभिचिन्हांकित करता है, जहाँ माल की विशेषता इसके भौगोलिक मूल को अनिवार्य रूप से परिलक्षित करती है) के रूप में किया जाता है। अन्य प्रकार की औद्योगिक सम्पदा का संरक्षण मुख्य रूप से प्रौद्योगिकी के पुनरुद्धार, डिजाइन और सृजन को अभिप्रेरित करने के लिए किया जाता है। इस श्रेणी में अविष्कार जिसका संरक्षण पेटेन्ट द्वारा किया जाता है, औद्योगिक डिजाइन और व्यापार गोपनीयता शामिल हैं।

कॉपीराइट और कॉपीराइट से संबंधित अधिकार–साहित्यिक और कलात्मक कार्यों जैसे पुस्तक और अन्य लेखन, संगीत संकलन, चित्रकारी, मूर्तिकला, कम्प्यूटर प्रोग्राम और फिल्म के लेखकों के अधिकारों को कॉपीराइट द्वारा संरक्षण दिया जाता है। अन्य संबंधित अधिकारों जैसे अभिनय (निष्पादन) का अधिकार, फोनोग्राम के निर्माता (ध्वनि रिकार्डिंग) और प्रसारण संगठन के लिए भी संरक्षण की गारंटी दी जाती है। कॉपीराइट के तहत किसी लेखक या रचनाकार को उसके कार्य की कॉपी, वितरण एवं उपयोग का पूर्ण अधिकार प्राप्त है। कॉपीराइट नियम के तहत सुरक्षित रचना का उपयोग कोई दूसरा व्यक्ति तब तक नहीं कर सकता है, जब तक वह रचनाकार से अनुमति नहीं ले लेता। आमतौर पर रचना को कॉपीराइट सुरक्षित करने के लिये किसी प्रकार के रजिस्ट्रेशन की जरूरत नहीं है। केवल, रचनाकर का नाम एवं रचना वर्ष लिख देने से रचना अपने आप में सुरक्षित हो जाती है। वैसे भारतीय संविधान के कॉपीराइट एक्ट 1957, जो जनवरी 1958 से कार्यरूप में आया (1983, 1984,

1992, 1994, और 1999, में संषोधित) के तहत रजिस्ट्रेशन भी प्राप्त किया जा सकता है। यह रजिस्ट्रेशन रचनाकर के जीवन पर्यन्त तथा तत्पश्चात 50 वर्षों तक मान्य रहता है।

बौद्धिक संपदा अधिकार, जो इन दोनों वर्गों में नहीं आते हैं उन्हें "स्वयं मूल" कहा जाता है, जिसका अर्थ है कि "अपनी तरह का" तथा इन अधिकारों के तहत सेमी कंडक्टर चिप्स के ले–आउट डिजाइन एवं पादप किस्म संरक्षण और कृषक अधिकार शामिल हैं। इन सभी वर्गों में वर्णित बौद्धिक सम्पदा के अधिकारों में से कई अधिकार कृषि क्षेत्र से संबंधित हैं तथा कृषि क्षेत्र में उत्पादित वस्तुओं या सेवाओं के संरक्षण के लिए उपयोगी हैं।

कृषि में उपयोगी बौद्धिक संपदा के अधिकार

पेटेंट

संभवत आज के युग में सबसे महत्वपूर्ण आईपीआर हैं। पेटेंट धारक को पेटेन्टेड उत्पाद या प्रक्रिया को बनाने, उपयोग या बेचने से रोकने का अधिकार देते हैं। साथ ही पेटेंट दस्तावेजों के माध्यम से पेटेन्टेड उत्पाद या प्रक्रिया से जनता को अवगत कराते हैं। यह शोधकर्ताओं को भविष्य में भी उपयोगी उत्पाद या सेवाएं विकसित करने के लिए सक्षम बनाता है। पेटेंट किसी आविष्कारक या उसके उत्तराधिकारी या उसके द्वारा कानूनन सत्यापित व्यक्ति को उसके आविष्कार के लिये सम्बन्धित सरकार के द्वारा निश्चित समयावधि तक प्रदान किया जाता है। इस समयावधि में आविष्कारक अथवा उसके प्रतिनिधि को यह अधिकार होता है कि वह अपने आविष्कार का व्यापारिकरण कर सके और उससे आर्थिक लाभ उठा सके। यह अधिकार आविष्कारक को सरकार द्वारा निर्धारित एक ईनाम है, जिसका लाभ उसे 20 वर्षों तक मिलता है इसके बाद यह आविष्कार पूरे समाज की सम्पत्ति कहलाती है। पेटेंट योग्य उत्पादों को पेटेंटिबिलिटी के मानदंडों को पूरा करना होता है। पेटेंट प्राप्त करने के लिए दो महत्वपूर्ण मापदंड हैं – नवीनता, जो पूर्व काल में ज्ञात नहीं है अर्थात कहीं भी उसका विवरण उपलब्ध न हो तथा औद्योगिक उपयोगिता। पेटेंट आविष्कारों के लिए दिया जाता है। 'आविष्कार' का अर्थ उस प्रक्रिया या उत्पाद से है, जो कि औद्योगिक उपयोजन के योग्य है। आविष्कार नवीन एवं उपयोगी होना चाहिये तथा इसको उस समय की तकनीक की जानकारी में अगला कदम होना चाहिए। यह आविष्कार उस कला में कुशल व्यक्ति के लिए स्पष्ट भी नहीं होना चाहिये। किसी शोध को नया आविष्कार तब तक नहीं कहा जा सकता है जब तक वह नवीनता के मापदंड पर खरा न उतरता हो। यदि किसी बात का पूर्वानुमान किसी प्रकाशित दस्तावेज के द्वारा किया जा सकता था या पेटेंट आवेदन के प्रस्तुत करने के पूर्व विश्व में और कहीं प्रयोग किया जा चुका है, तो इसे नवीन नहीं कहा जा सकता। यदि कोई बात सार्वजनिक क्षेत्र में है या पूर्व कला के भाग की तरह उपलब्ध है तो उसे भी आविष्कार नहीं कहा जा सकता है। पेटेंट अधिकार के तहत किसी आविष्कार को सुरक्षित करने के लिए यह जरूरी है कि अपने आविष्कार की प्रक्रिया, उपयोगिता आदि का उल्लेख उस देश, जहाँ पेटेंट सुरक्षा चाहते हैं, के पेटेंट कार्यालय में उपलब्ध, निर्धारित फॉर्म में करें तथा निर्धारित शुल्क जमा करें। भारतीय पेटेंट एक्ट, 1970 एवं संशोधन–2005 के तहत किसी आविष्कार को सुरक्षित करने के लिए फॉर्म (फॉर्म–1 पेटेंट अनुदान का आवेदन, फॉर्म–2 कार्य का अपूर्ण/पूर्ण विवरण, फॉर्म–3 आवेदक का उपक्रम एवं व्याख्या, फॉर्म–5 आविष्कारक के तौर पर घोषणा, फॉर्म–26 किसी अन्य व्यक्ति या पैटेंट एजेंट की प्राधिकृति) को भरना होता है और उसे पेटेंट ऑफिस, कोलकाता, न्यू दिल्ली, चेन्नई या मुम्बई

में जमा करना होता है। पेटेंट एक सम्पत्ति है जो कि विरासत में प्राप्त की जा सकती है। पेटेंट धारक उसे किसी और को उसे दे सकता है, या बन्धक रख सकता है। यदि दूसरे लोगों ने पेटेंट धारक से लाइसेंस न लिया हो तो वह उन्हें अपने पेटेंट का प्रयोग करने से या उसका विक्रय करने से रोक सकता है। उसे अधिकार है कि वह लाइसेंस के द्वारा दूसरे लोगों को यह कार्य करने के लिये अनुमति दे और इसके लिये वह रॉयल्टी भी ले सकता है। यदि कोई व्यक्ति, पेटेंट धारक से बिना लाइसेंस लिए या उसके पेटेंट का अनाधिकृत प्रयोग करता है तो पेटेंट धारक उस पर हर्जाने का मुकदमा दायर कर उचित अनुतोष प्राप्त कर सकता है।

पौध किस्मों का संरक्षण

पौध किस्मों का विकास वर्षों के कठिन परिश्रम एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित सुनियोजित प्रयासों का परिणाम होता है। अतः इस आधार पर पौध किस्मों को भी उनके प्रजनकों की बौद्धिक सम्पदा माना जाता है। पौध किस्मों का संरक्षण और कृषक अधिकार अधिनियम, 2001, पौध किस्मों और कृषकों के अधिकार के संरक्षण के लिए और पौधों की नई किस्मों का विकास प्रोत्साहित करने के लिए किया गया है। अधिनियम के अनुसार 'किस्म' शब्द का अर्थ है – सूक्ष्म अवयव को छोड़कर एक ही वनस्पति वर्ग के निचली कोटि का पौध समूह, जिसको (i) दिए गए प्रकार की जाति के पौध समूह के परिणाम स्वरूप उक्त विशेषता के रूप में परिभाषित किया जाता है (ii) जो कम से कम किसी एक उक्त विशेषता की अभिव्यक्ति द्वारा किसी अन्य पौध समूह से अलग पहचाना जाता है और (iii) प्रजनन के लिए इसकी उपयुक्तता के संबंध में एक यूनिक माना जाता है जो इस प्रकार के प्रजनन के पश्चात अपरिवर्तित रहता है और इस प्रकार की किस्म, वर्तमान किस्म, परिवर्तित जाति की किस्म, कृषक किस्म और अनिवार्य रूप से व्युत्पन्न किस्म शामिल होती हैं। अधिनियम के तहत जारी पंजीकरण प्रमाणपत्र पेड़ों और वाईन के मामले में नौ वर्षों के लिए वैध होगा और अन्य फसलों के मामले में छः वर्षों के लिए मान्य होगा और इसके लिए निर्धारित शुल्क का भुगतान करने पर शेष अवधि के लिए इसकी समीक्षा और नवीकरण किया जाएगा शर्त यह है कि कुल मान्य अवधि निम्नलिखित से अधिक नहीं होगी :–पेड़ों और लता के मामले में किस्म के पंजीकरण की तारीख से अठारह वर्ष वर्तमान किस्म के मामले में, बीज अधिनियम, 1966 के तहत केन्द्र सरकार द्वारा उस किस्म की अधिसूचना की तारीख से पन्द्रह वर्ष और अन्य मामलों में किस्म के पंजीकरण की तारीख से पन्द्रह वर्ष। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य पादप किस्मों की सुरक्षा के लिए प्रभावी प्रणाली लागू करना, किसानों एवं पादप प्रजनकों को अधिकार प्रदान कराना, किसानों को उच्चकोटि के बीज एवं उन्नत पादप सामग्री उपलब्ध करना तथा बीज उद्योग के विकास को सुगम बनाने के साथ–साथ अनुसंधान एवं विकास के लिए निवेश को प्रोत्साहन देना है।

व्यापार चिन्ह

व्यापार चिन्ह अधिनियम,1999, के अनुसार व्यापार चिन्ह से अभिप्राय उस चिन्ह से है जिसे लेखा–चित्रीय रूप में प्रस्तुत किया जा सके तथा जो एक व्यक्ति की वस्तुओं एवं सेवाओं को अन्य व्यक्तियों की वस्तुओं एवं सेवाओं से अलग करने में सक्षम हो और वस्तुओं का आकार, उनकी पैकिंग एवं रंग संयोजन शामिल कर सके। एक पारम्परिक ट्रेडमार्क किसी नाम, शब्द, मुहावरा,

लोगो, प्रतीक डिजाइन या इन सब के मिश्रण से बनता है। जबकि किसी खास रंग, गंध या ध्वनि पर आधारित ट्रेडमार्क गैरपरम्परिक कहलाता है। किसी उत्पाद या सेवा को बाजार में लाने के लिये, यह जरूरी नहीं कि उसका पंजीकरण कराया जाये। लेकिन, इस उत्पाद या सेवा के गैरकानूनी उपयोग को रोकने के लिए यह जरूरी है कि उसका पंजीकरण कराया जाये। व्यापार चिन्ह अधिनियम,1999 भारत में व्यापार चिन्ह हेतु शासी अधिनियम का उद्देश्य देश में आवेदित व्यापार चिन्हों को पंजीकृत करना एवं वस्तुओं एवं सेवाओं के व्यापार चिन्ह को बेहतर सुरक्षा प्रदान करना तथा चिन्ह के कपटपूर्ण प्रयोग को रोकना है। अधिनियम के अंतर्गत, वाणिज्य एवं उद्योग मंत्रालय के, औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग के अंतर्गत महानियंत्रक, पेटेंट्स, डिजाइन व व्यापार चिन्ह 'व्यापार चिन्हों का रजिस्ट्रार' है। रजिस्ट्रार को व्यापार चिन्हों के पंजीकरण के प्रयोजन से वस्तुओं और सेवाओं को उनके अंतरराष्ट्रीय वर्गीकरण के अनुरूप वर्गीकृत करना होता है तथा उसका निर्णय अंतिम होता है। कोई भी व्यक्ति यदि किसी प्रयुक्त अथवा अपने द्वारा प्रयोग किए जाने हेतु प्रस्तुत व्यापार चिन्ह का स्वामी होने का दावा करता है तो उसे व्यापार चिन्ह के पंजीकरण हेतु निर्धारित ढंग में लिखित में रजिस्ट्रार को आवेदन करना होता है। वस्तुओं एवं सेवाओं की विभिन्न श्रेणियों हेतु एक ही आवेदन किया जा सकता है। जिस ट्रेड मार्क रजिस्ट्ररी के क्षेत्र में आवेदक भारत में अपना व्यापार करता है उसके कार्यालय में आवेदन जमा करना होता है। जब व्यापार चिन्ह के पंजीकरण हेतु कोई आवेदन स्वीकार लिया जाता है तब उसे व्यापार चिन्ह पत्रिका में विज्ञापित किया जाता है। पंजीकरण, की अवधि पंजीकरण की दिनांक से 10 वर्ष होगी परंतु इसका इस अधिनियम के प्रावधान के अनुरूप समय–समय पर नवीकरण भी करवाया जा सकता है। व्यापार चिन्ह का पंजीकरण स्वामी को पंजीकृत व्यापार चिन्ह के प्रयोग का विशिष्ट अधिकार प्रदान करता है उन वस्तुओं एवं सेवाओं, जिनके संबंध में चिन्ह पंजीकृत किया गया है, के लिए प्रतीक (आर) प्रयोग कर सकता है तथा उल्लंघन की स्थिति में देश के उपयुक्त न्यायालयों से अनुतोष (हर्जाना) प्राप्त कर सकता है। वाणिज्यिक रूप से प्रयोग किए जाने वाले व्यापार चिन्ह कृषि तथा उद्योगो दोनों में प्रयोग किए जा सकते हैं। इसका प्रमुख उद्देश्य एक संस्था के बनाए गए सामान को दूसरे से अलग करना है ताकि ग्राहक भ्रमित न हो। जैसे कि बीज के बाजारीकरण में तथा फसलों में छिड़काव के रूप में प्रयोग होने वाले कवकनाशी, जीवाणुनाशी तथा खरपतवारनाशी रसायन। ट्रेडमार्क वाणिज्यिक व्यापार चिन्हों को गलत उपयोग से बचाता है एवं पंजीकरण का नवीकरण किया जा सकता है। दुनिया के लगभग सभी देशों में ट्रेडमार्क के संरक्षण का प्रावधान है। यदि एक संस्था ग्राहकों में अपना विश्वास बना लेती है तो प्रायः किसान उसी कम्पनी का सामान चिन्ह देखकर खरीदते है तो इस अधिनियम के अंतर्गत कोई भी संस्था किसी भी अन्य संस्था का चिन्ह प्रयोग नही कर सकती। भारत में, ट्रेडमार्क एक्ट 1999 के तहत कोई भी व्यक्ति अपने उत्पाद या सेवा का रजिस्ट्रेशन, ट्रेडमार्क रजिस्ट्रेशन ऑफिस जो कि मुंबई, दिल्ली, कोलकाता, चेन्नई एवं अहमदाबाद में स्थित है, से करवा सकता है।

भौगोलिक संकेत

भौगोलिक संकेत (जी.आई.) का अर्थ है एक ऐसा संकेत, जो वस्तुओं की पहचान, जैसे कृषि उत्पाद, प्राकृतिक वस्तुएं या विनिर्मित वस्तुएं, एक देश के राज्य क्षेत्र में उत्पन्न होने के आधार पर करता है, जहाँ उक्त वस्तुओं की दी गई गुणवत्ता, प्रतिष्ठा या अन्य कोई विशेषताएं इसके भौगोलिक उद्भव में अनिवार्यतः योगदान देती हैं। दो प्रकार के भौगोलिक संकेत होते

हैं (i) वे भौगोलिक नाम हैं जो उत्पाद के उद्भव के स्थान का नाम बताते हैं जैसे शैम्पेन, दार्जिलिंग चाय, आदि। (ii) गैर–भौगोलिक पारम्परिक नाम जो यह बताते हैं कि एक उत्पाद किसी एक क्षेत्र विशेष से संबद्ध है जैसे अल्फांसो, बासमती, इत्यादि। वस्तुओं के भौगोलिक संकेत (पंजीकरण और सुरक्षा) अधिनियम,1999 भारत में भौगोलिक संकेतों को अधिशासित करता है। किसी वस्तु विशेष के संबंध में एक भौगोलिक संकेत पंजीकरण के इच्छुक, कानून द्वारा स्थापित किसी प्रक्रिया विधि, व्यक्तियों के समूह, संगठन या प्राधिकरण को भौगोलिक संकेत के पंजीयक के पास लिखित आवेदन प्रस्तुत करना होता है। आवेदन उस भौगोलिक संकेत के पंजीयक कार्यालय में जमा किया जाता है जिसकी राज्य क्षेत्र सीमाओं, राज्य क्षेत्र, क्षेत्र या स्थान के अंतर्गत वह आता है, जहाँ संबंधित भौगोलिक संकेत स्थित है। यद्यपि, पंजीकरण अनिवार्य नहीं है, फिर भी यह उल्लंघन के लिए कार्रवाई की सुविधा हेतु बेहतर कानूनी सुरक्षा का लाभ उठाने में सहायता देता है। जीआई के पंजीकरण से उन वस्तुओं के संबंध में जीआई के उपयोग के लिए पंजीकृत स्वामी को विशिष्ट और स्वतः अधिकार मिलेगा, जिनके लिए पंजीकरण किया गया है और जीआई के उल्लंघन के विषय में राहत पाने का अधिकार भी मिलता है। जीआई का पंजीकरण दस वर्ष की अवधि के लिए किया जाएगा, परन्तु इसे अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार समय–समय पर नवीकृत किया जा सकता है। कुछ वस्तुएं अधिनियम के तहत पंजीकरण योग्य नहीं हैं जैसे कि जब भौगोलिक संकेत एक जेनरिक (वंश) नाम बन जाता है, उन वस्तुओं के नाम, जिन्होंने अपने मूल अर्थ खो दिए हैं और अब उनके सामान्य नाम उपयोग में लाए जाते हैं।

व्यापार गोपनीयता

जानकारी बौद्धिक सम्पत्ति का एक दूसरा महत्वपूर्ण रूप है जो अनुसंधान एवं विकास संस्था द्वारा सृजित है उनको पेटेन्ट या प्रतिलिप्याधिकार का लाभ नहीं मिलता है। ऐसी जानकारी को व्यापार गोपनीयता के रूप में गुप्त रखा जाता है। व्यापार गोपनीयता या अप्रकट सूचना, एक सूचना है उसे जानबूझकर गुप्त रखा जाता है और यह आर्थिक हित सहित वाणिज्यिक अनुप्रयोग के लिए सक्षम है। यह ऐसी सूचना को संरक्षित रखता है जो प्रतिस्पर्धात्मक लाभ प्रदान करता है बशर्ते कि ऐसी सूचना प्रतियोगियों को आसानी से उपलब्ध नहीं होती या उनके द्वारा नहीं जानी जाती है। उनमें तकनीकी डाटा, आंतरिक प्रकियाएं, कार्यविधियां, सर्वेक्षण विधियां, नया आविष्कार जिसके लिए अब तक पेटेन्ट का आवेदन दर्ज नहीं किया गया है, ग्राहकों की सूची, विनिर्माण की प्रक्रिया, तकनीकी, सूत्र, आरेखन, प्रशिक्षण सामग्री स्रोत कोड आदि शामिल हैं। इस लिए यह सुनिश्चित करने द्वारा कि संविदात्मक बाध्यता उन व्यक्रियों पर प्रवर्तित की जाए जो ट्रेड गोपनीयता के उपयोग के लिए अनुमत है विशेषकर तब जब तृतीय पक्ष को इसका लाइसेंस दिया जाता है, व्यापार गोपनीयता के लिए विश्वासनीयता सुदृढ़ करने हेतु अत्यावश्यक हो जाता है। चूंकि कोई दस्तावेजी साक्ष्य नहीं है जैसा कि पत्र पेटेन्ट या प्रतिलिप्याधिकार पंजीकरण या ट्रेड मार्ग पंजीकरण, जिससे कि यह साबित किया जा सके कि व्यापार गोपनीयता मूल रूप से स्वामी द्वारा सृजित है, व्यापार गोपनीयता के सृजन भेजकर और डाक चिन्हित और मुहरबंद लिफाफा अपने पास रखकर या सूचना की प्रति तृतीय पक्ष के पास जमा करके जो दिनांकित प्रति का रखरखाव करेगा। स्वामी की इच्छा अनुसार व्यापार गोपनीयता अनिश्चित काल की अवधि तक गुप्त रहती है बशर्ते कि सुरक्षा और इसकी गोपनीयता का उल्लंघन नहीं किया जाता है। भारत में व्यापार गोपनीयता को विनियमित करने वाला कोई विशिष्ट विधान नहीं है। भारत सामान्य संरक्षण के कानून का पालन करता है और

इससे संबंधित सभी मामले साधारणतया संविदा अधिनियम, 1872 के अधीन शामिल किए जाते हैं। इसलिए यदि व्यापार गोपनीयता वाली सूचना बाहरी निकलती है तो उन पक्षों के विरुद्ध कानूनी कार्रवाई की जा सकती है जिन्होंने संविदा कानून के तहत इसे प्रकट किया है। तथापि, ऐसे मामले में व्यापार गोपनीयता का संरक्षण खत्म हो जाएगा और यह जनता के लिए उपलब्ध हो जाएगा।

वर्तमान वैश्वीकरण के दौर में हर देश के नागरिक विशेषकर विकासशील देशों के नागरिकों के लिए यह नितांत आवश्यक है कि वो अपने बौद्धिक सम्पदा अधिकारों के प्रबंधन एवं सुरक्षा के लिए जागरूक रहे क्योंकि बौद्धिक सम्पदाओं के संरक्षण से किसी व्यक्ति विशेष का ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण देश का आर्थिक एवं सामाजिक विकास होता है। अनुसंधान, विकास, विनिर्माण, विपणन और व्यावहारिक गतिविधियों जैसे हर क्षेत्र में तकनीकी कौशल की आवश्यकता होती है। विभिन्न कृषि गतिविधियों के साथ जुड़े एवं कानून के तहत सुरक्षित बौद्धिक सम्पदा के अधिकार अनुसन्धान में किये गए भारी निवेश के प्रतिफल तथा भविष्य में कृषि के क्षेत्र में विकास लिए पर्याप्त अवसर प्रदान करने में मदद कर सकते हैं।

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु कदन्न एवं कूट फसलोत्पादन की उन्नत तकनीकी

डी.सी. जोशी एवं एम.एस. भिंडा

भाकृअनुप–वि.प.कृ.अनु.सं, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

हमारा देश विविधताओं का देश है तथा यहाँ पर विविध प्रकार की फसलें उगायी जाती हैं जो कि क्षेत्रीय जरूरतों को देखते हुए वहाँ की खाद्य तथा पोषण सुरक्षा को पूरा करती हैं। भारत में असिंचित अवस्था में बोई जाने वाली फसलों में कदन्न एवं कूट फसलों का मुख्य स्थान है। हमारे देश में कदन्न फसलों का उत्पादन मुख्यतया देश के दक्षिणी भू–भाग में होता है, जिसमें कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु प्रमुख हैं। इन राज्यों में देश के कुल कदन्न व कूट फसलों का उत्पादन का लगभग 70 प्रतिशत हिस्सा पैदा होता हैं। देश के उत्तरी भाग में कदन्न व कूट फसलों का उत्पादन पश्चिमी एवं पूर्वी हिमालय प्रक्षेत्रों में होता है, जिनमें जम्मू व कश्मीर, हिमांचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार राज्य के क्षेत्र आते हैं। जबकि कूट फसलें मुख्यतः हिमालयी राज्यों जैसे जम्मू व कश्मीर, हिमांचल प्रदेश, उत्तराखण्ड और उत्तर पूर्व के राज्य में उगाई जाती हैं। इन फसलों को मुख्यतः असिंचित परिस्थितियों में बोया जाता है। निम्न उर्वरता वाली भूमि में भी इनकी उपज क्षमता बनी रहती है। पर्वतीय क्षेत्रों में जहाँ सिंचाई की सुविधा मात्र लगभग 10 प्रतिशत खेती योग्य भूमि में उपलब्ध है और शेष 90 प्रतिशत में वर्षा के पानी में निर्भर रहना पड़ता है, इन फसलों का विशेष महत्व है और ये अनाज ग्रामीण अंचल में रहने वाले लोगों के भोजन का प्रमुख स्रोत हैं।

उत्तराखण्ड में कदन्न एवं कूट फसलों का उत्पादन

उत्तराखण्ड में कदन्न फसलों में मुख्यतः मंडुवा व मादिरा उगाई जाती है और इनकी खेती कुल कृषि योग्य भूमि के 23.5 प्रतिशत भाग में की जाती है। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार पिछले दशक में मंडुवा एवं मादिरा की उपज में निरन्तर कमी हुई है। मंडुवा एवं मादिरा की खेती मैदानी क्षेत्रों को छोड़कर राज्य के अन्य सभी जिलों में की जाती है। प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्रों की खरीफ की फसलों में धान के बाद मंडुवा का प्रमुख स्थान है। कदन्न फसलों में राज्य में मंडुवा के पश्चात मादिरा का स्थान प्रमुख है। उत्तराखंड में मंडुवा की खेती का कुल क्षेत्र लगभग 84000 हैक्टेयर है तथा इसका उत्पादन 120000 टन व उत्पादकता 1430 किग्रा/प्रति हैक्टेयर है। इसी प्रकार अन्य लघु धान्य फसलों का कुल क्षेत्रफल लगभग 53000 हैक्टेयर है तथा इनका उत्पादन 70000 टन व उत्पादकता 1339 किग्रा/प्रति हैक्टेयर है। कूट फसलों के उत्पादन क्षेत्रफल व उत्पादकता सम्बन्धित आंकडे का कोई विश्वश्नीय स्रोत नही हैं परन्तु इनमें मुख्यतः रामदाना व कूट्टू की फसल हिमालयी क्षेत्रों में उगायी जाती हैं। रामदाना की फसल निम्न हिमालयी क्षेत्रों से लेकर मध्य ऊँचाई तथा उच्च हिमालयी क्षेत्रों में उगाई जाती है तथा कुटटू की फसल विशेष कर उच्च हिमालयी क्षेत्रों में ही उगायी जाती हैं।

कदन्न एवं कूट फसलों का पोषण में महत्व

पोषक मान (न्यूट्रीटिव वैल्यू) की दृष्टि में कदन्न एवं कूट फसलें एक महत्वपूर्ण फसल समूह है। ये फसलें पोषक पदार्थों के लिये उत्कृष्ट हैं। मंडुवा में कैल्शियम धान एवं गेहूँ की तुलना में क्रमशः 34 तथा 8 गुना अधिक पाया जाता है। इसी तरह मादिरा में रेशा 9.8 ग्राम/100 ग्राम है जो कि धान तथा गेहूँ से कई गुना अधिक है (तालिका 1) खनिज लवण जिनका हमारे शरीर के विकास एवं रोग प्रतिरोधी क्षमता में विशेष महत्व है, इन फसलों में धान तथा गेहूँ से अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। साथ ही इन फसलों में संतुलित अमीनो अम्ल की मात्रा इन्हें ज्यादा उपयोगी खाद्य पदार्थ बनाते हैं।

इन फसलों से बनाये गये उत्पादों का ''ग्लाइसमिक इन्डैक्स'' कम होता है, जिससे इन्हें मधुमेह के रोगियों के लिए बहुत अच्छी खुराक माना जाता है। इन फसलों से मधुमेह रोगियों के लिए कई खाद्य पदार्थ बनाये जाते हैं। गत वर्षो में इन पदार्थों की शहरी क्षेत्रों में काफी मांग बढ़ गयी है।

तालिका 1– कदन्न एवं कूट फसलों में पोषक तत्व

पोषक तत्व	मंडुवा	मादिरा	रामदाना	कुट्टू	धान	गेहूँ
प्रोटीन (ग्राम /100 ग्राम)	7.3	6.2	14.5	12	6.8	11.8
वसा (ग्राम /100 ग्राम)	1.3	5.8	10.2	7.4	0.5	1.5
ऊर्जा (किलोकैलोरी)	328	309	374.0	355	345	346
रेशा (ग्राम /100 ग्राम)	3.6	9.8	8.8	17.8	0.2	1.2
खनिज (ग्राम /100 ग्राम)	2.7	4.7	4.3	3.3	0.7	1.5
कैल्शियम (मिलीग्राम/100 ग्राम)	344	14	162	110	10	41
लाइसीन (ग्राम/100 ग्राम प्रोटीन)	3.5	16.6	6.0	5.9	3.7	2.9
मिथयोनिन (ग्राम/100 ग्राम प्रोटीन)	3.4	1.9	3.0	3.7	2.4	1.5
सिस्टीन (ग्राम/100 ग्राम प्रोटीन)	2.2	2.8	2.8	2.1	1.4	2.2
ट्रिपटोफेन (ग्राम/100 ग्राम प्रोटीन)	1.6	1.0	3.4	1.4	1.4	1.1
आइसोलुइसीन (ग्राम/100ग्राम प्रोटीन)	6.4	8.0	2.8	4.7	3.9	3.3

पर्वतीय क्षेत्रों के लिये कदन्नों एवं कूट फसलों की उन्नतशील प्रजातियाँ

विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा तथा अन्य संस्थानों के द्वारा पर्वतीय क्षेत्रों में कदन्न एवं कूट फसलों की कई उन्नतशील प्रजातियाँ विकसित की गयी हैं। इन प्रजातियों में स्थानीय किस्मों की तुलना में ज्यादा पैदावार प्राप्त की जा सकती है। साथ ही ये प्रजातियाँ सभी प्रमुख रोगों के लिये सहनशील या प्रतिरोधी है। इन प्रजातियों का विवरण एवं उनके विशिष्ट गुणों का उल्लेख तालिका 2 में किया गया है।

तालिका–2 उत्तर पश्चिमी हिमालय क्षेत्रों के कदन्न फसलों की उन्नत प्रजातियाँ

फसल	उन्नत प्रजातियाँ	उपयुक्त क्षेत्र	विशेषता	अवधि (दिन)	उपज क्षमता
मंडुवा	वी0एल0 मंडुवा 149	मध्यम ऊँचाई के पर्वतीय क्षेत्रों के लिए	दाना तांबाई रंग, पौधे की ऊँचाई 85–90 सेमी, झौंका रोग प्रतिरोधी, 8–10 खुली उंगलियाँ	105–110	25–30 कुं/है
	वी0एल0 मंडुवा 146	मध्यम तथा अधिक ऊँचाई के पर्वतीय क्षेत्रों के लिए	झौंका रोग प्रतिरोधी, ताँबाई रंग, 6–7 बंद उंगलियाँ पौधे की ऊँचाई 85–90 सेमी	95–100	20–25 कुं/है
	वी0एल0 मंडुवा 315	मध्यम ऊँचाई तक के क्षेत्रों के लिए	दाना हल्का ताँबाई रंग पौधे की ऊँचाई 90–100 सेमी, 6–7 उंगलियाँ बंद मुट्ठी का आकार लिए, झौंका रोग प्रतिरोधी	105–110	20–26 कुं/है चारा 66–90 कुं/है
	वी0एल0 मंडुवा 324	उत्तराखण्ड के मध्य पर्वतीय क्षेत्रों के लिये	दाना बहुत हल्का ताँबाई रंग पौधे की ऊँचाई 80–95 सेमी उंगलियाँ व ग्रीवा झौंका का कम प्रकोप	105–135	19–22 कुं/है चारा 50–70 कुं/है
	पी0आर0 एम0 1		झौंका रोग के लिये प्रतिरोधी पौधे की ऊँचाई 100–110 सेमी तक	110–115	20–25 कुं/है
	पी0आर0 एम0 2		दाना हल्का ताँबाई रंग, झौंका रोग एवं पर्ण चित्ती रोग के लिये प्रतिरोधी, पौधे की ऊँचाई 80–85 सेमी	95	20–25 कुं/है
मादिरा	वी0एल0 मादिरा 172	उत्तराखण्ड के सभी मादिरा उत्पादन वाले क्षेत्रों के लिए	कंडुवा तथा चित्ती रोग सहिष्णु दाना स्लेटी रंग पौधे की ऊँचाई 95 से 100 सेमी	85–90	20–23 कुं/है

	वी0एल0 मादिरा 29	उत्तराखण्ड के सभी मादिरा उत्पादन वाले क्षेत्रों के लिए	कंडुवा तथा चित्ती रोग सहिष्णु दाना स्लेटी रंग पौधे की ऊँचाई 95 से 100 सेमी	90–95	20 से 25 कुं/है
	पी0आर0 जे0–1	उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र	दाना सलेटी रंग, कण्डुवा व पर्ण चित्ती रोगों की पूर्णतया प्रतिरोधी पौधे की ऊँचाई 150–170 सेमी	100–110	20 से 25 कुं/है
	वी0एल0 207	उत्तराखण्ड के सभी मादिरा उत्पादन वाले क्षेत्रों के लिए	दाना सलेटी रंग, कंडुवा सहिष्णु	90–95	16 से 19 कुं/है

तालिका –3 उत्तर पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में लिये रामदाना की उन्नत प्रजातियाँ

प्रजाति का नाम	फूल आने का समय (दिनों में)	पकने की अवधि (दिनों में)	पौधों की ऊँचाई (से.मी.)	उपज क्षमता (क्विंटल प्रति हैक्टेयर)	किग्रा प्रति/ नाली
अन्नपूर्णा	71	132	138	16–18	32–36
पी0आर0ए0 1	65	125	150	18–20	36–40
पी0आर0ए0 2	70	130	140	20–22	40–44
पी0आर0ए0 3	70	130	135	22–25	44–50
वी0एल0 चुआ 44	55	100	135	20–22	40–44
दुर्गा (आई0सी0 35407)	60	110	135	22–25	44–50

तालिका –4 उत्तर पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में लिये कुट्टू की उन्नत प्रजातियाँ

प्रजाति का नाम	स्पेसीज	फूल लगने की अवधि	पकने की अवधि	प्रोटीन प्रतिशत	औसत उपज क्विंटल/ हैक्टेयर
वी0एल0 7	सामान्य उगल	34	72	10.8	8.0
हिमप्रिया	फाफर	60	113	9.2	14.0
पी0आर0बी0 1	फाफर	48	102	11.4	18.0
संगला बी0 1	फाफर	66	122		18.0

कदन्न एवं कूट फसलों के उत्पादन की उन्नत सस्य विधियाँ

1. कदन्न फसलें

बुवाई एवं बीज दर

पर्वतीय क्षेत्रों में मंडुवा एवं मादिरा की बुवाई छिटकाव विधि से की जाती है परन्तु इसमें सभी बीज अलग अलग गहराई पर गिरते हैं जिससे अंकुरण एक समान नहीं होता है। अच्छी फसल लेने के लिये मंडुवा की बुवाई 20 सेमी दूरी तथा मादिरा की 25 सेमी की दूरी पर पंक्तियों पर करनी चाहिये। पौधे से पौधे की दूरी 7.5 से 10 सेमी तक रखनी चाहिये। 3–4 सप्ताह में अतिरिक्त पौधों की छटनी कर देनी चाहिये। एक हैक्टेयर क्षेत्र में 10 किलोग्राम बीज का प्रयोग करना चाहिये।

फसलों की बुवाई का समय क्षेत्र की ऊँचाई पर निर्भर करता है। मंडुवा तथा मादिरा की बुवाई निम्न प्रकार विवरण के अनुसार करनी चाहिये–

क्षेत्र की ऊँचाई	मंडुवा बोने का समय	मादिरा बोने का समय
1000 मीटर तक	जून प्रथम पक्ष	मई द्वितीय पक्ष से जून प्रथम सप्ताह
1000–1500 मीटर तक	मई द्वितीय पक्ष	मध्य अप्रैल से मध्य मई
1500 से अधिक	मई प्रथम पक्ष	अप्रैल प्रथम पक्ष

रोपण विधि

वर्षा के समय पर न होने के कारण बुवाई में विलम्ब होने पर मंडुवा व मादिरा की पौध रोपण द्वारा उगाकर भरपूर उपज ली जा सकती है। इनकी रोपाई के लिए धान की भांति खेत में मथाई करने की आवश्यकता नहीं होती जिससे इनकी रोपाई करने में कोई कठिनाई नहीं होती। रोपाई के लिए 25–30 दिन की पौध अच्छी रहती है। पौध की रोपाई ऐसे दिन करनी चाहिए जब वर्षा होकर रूकी हो अथवा शीघ्र वर्षा होने की सम्भावना हो। कतार से कतार एवं पौधे से पौधे की दूरी सीधी बुवाई के समान ही रखनी चाहिए। एक स्थान पर कम से कम 2–3 पौधे अवश्य लगाने चाहिए रोपाई विधि से खेती करने में खरपतवार नियन्त्रण पर होने वाले व्यय में काफी कमी हो जाती है साथ ही पौधों की छंटाई करने का अतिरिक्त कार्य भी नहीं करना पड़ता। मंडुवा व मादिरा की शीघ्र पकने वाली प्रजातियों की रोपाई जुलाई मध्य तक करके अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है।

उर्वरक प्रयोग

आमतौर पर मंडुवा एवं मादिरा की खेती बिना उर्वरक प्रयोग के की जाती है। अच्छी फसल लेने के लिये संस्तुत मात्रा में उर्वरक प्रयोग भी आवश्यक है। मंडुवा तथा मादिरा में 40 किग्रा नत्रजन तथा 20 किग्रा फास्फेट प्रति हैक्टेयर की

संस्तुति दी जाती है तथा मंडुवा में 20 किग्रा पोटाश की भी अतिरिक्त संस्तुति दी जाती है अर्थात प्रति नाली क्षेत्रफल में 1.750 किग्रा यूरिया तथा 2.500 किग्रा एस.एस.पी. दोनों फसलों में प्रयोग करना चाहिये। इसके अतिरिक्त मंडुवा में 670 ग्राम प्रति नाली म्युरेट ऑफ पोटाश का प्रयोग करना चाहिये। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा आधारीय रूप में बुवाई के समय ही देनी चाहिये। नत्रजन की शेष मात्रा खड़ी फसल में बाली आने से पूर्व देनी चाहिये परन्तु ध्यान रहे कि यूरिया का प्रयोग खड़ी फसल पर करते समय जमीन में पर्याप्त नमी हो।

खरपतवार नियंत्रण

मंडुवा एवं मादिरा दोनों फसलों में उत्पादकता कम होने के कारणों में खरपतवारों की समस्या एक प्रमुख कारण है। ये भूमि से नमी, पोषक तत्वों, सूर्य की रोशनी, आदि के लिये फसलों से प्रतियोगिता करते हैं। इसके लिये प्रथम निराई 20–25 दिनों के बीच अवश्य कर लेनी चाहिये तथा दूसरी 30–35 दिनों के बीच करनी चाहिये। यदि बुवाई के समय भूमि में नमी की उचित मात्रा है तो बुवाई से 2–3 दिन के अन्दर 0.75 किग्रा सक्रिय अवयव प्रति हैक्टेयर की दर से आइसोप्रोटुरोन का छिड़काव करना चाहिये तथा इसके 30 दिन बाद एक निराई करनी चाहिये। यदि चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों की समस्या हो तो 2, 4–डी (सोडियम साल्ट) नामक रसायन का 1.2 किग्रा सक्रिय अवयव प्रति हैक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिये।

सारांश में हम कह सकते हैं कि मंडुवा तथा मादिरा दोनों ही पर्वतीय क्षेत्र की महत्वपूर्ण फसल हैं तथा इनमें खाद्य सुरक्षा को बनाये रखने की पूरी क्षमता है। ये खाद्यान्न ही नहीं वरन् चारे के लिये भी अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। उन्नत बीजों का प्रयोग, खरपतवार नियंत्रण, उर्वरक प्रबन्धन, रोग एवं कीट प्रबन्धन, आदि तकनीकों के इस्तेमाल से हम इसकी वर्तमान उत्पादकता को डेढ़ से दोगुना तक बढ़ा सकते हैं।

2.कूट फसलों की उन्नत शष्य विधियाँ

अ. रामदाना

रामदाना उत्पादन की तकनीक

विश्व के अनेक देशों में चौलाई–रामदाना की खेती प्रचलित है। भारत में इसकी खेती जम्मू कश्मीर से लेकर दक्षिण व उत्तर पूर्वी भारत में अल्प प्रयुक्त फसल के रूप में की जाती है। देश के पर्वतीय क्षेंत्रों में रामदाना एक नकदी फसल के रूप में उगाई जाती है तथा पहाड़ियों के भोजन में अहम हिस्सा रखती है। रामदाने की खेती गैर उपजाऊ, कंकरीली–पथरीली भूमियों तथा कम वर्षा वाले क्षेत्रों में सफलतापूर्वक की जाती है।

भूमि का चयन एवं खेत की तैयारी

रामदाने की खेती अमूमन सभी प्रकार की भूमियों में की जा सकती है परन्तु अच्छी उपज के लिए जल निकास युक्त बलुई दोमट मिट्टी उत्तम रहती है। पौध बढ़वार और विकास के लिए मृदा की पीएच मान 6 से 8 के मध्य अच्छा माना जाता है।

रामदाने का बीज बहुत छोटा होता है। अतः खेत की अच्छी प्रकार जुताई कर मिट्टी को भुरभुरा बना लेना चाहिए जिससे बीजों का मृदा से संपर्क अच्छी प्रकार से हो सके इसके लिए खेत में 2–3 बार जुताई कर पाटा लगाएँ व खेत को समतल कर लेना चाहिए।

बीज और बुवाई

बीज की मात्रा बुवाई की विधि पर निर्भर रहती है। छिड़कवा विधि से बुवाई करने पर 2 किग्रा तथा कतार विधि से बुवाई करने पर 1.2 से 1.5 किग्रा प्रति हैक्टेयर बीज पर्याप्त रहता है प्रायः किसान छिटकवा विधि से बुवाई करते है क्योंकि इससे कम मेहनत में सुगमता से बुवाई की जा सकती है परन्तु अधिकतम उपज के लिए बुवाई पंक्तियों में करनी चाहिए। कतार विधि से बुवाई करने से सस्य क्रियाओं में आसानी होती है। साथ ही उचित संख्या और समुचित बढ़वार होने से उपज अधिक प्राप्त होती है। कतार से कतार 45 सेंमी. तथा पौधे से पौधे मध्य 15 सेंमी. का फासला रखना उत्तम रहता है। बीज की 2 सेंमी. की गहराई पर बोना चाहिए। ध्यान रखें कि बुवाई करते समय खेत में पर्याप्त नमी रहे वरना अंकुरण प्रभावित हो सकता है। आसानी से बुवाई करने के लिए बीज को रेत के साथ मिलाकर (1:4) बोया जाना अच्छा रहता हैं।

खाद एवं उर्वरक

रामदाने की फसल प्रायः कम उपजाऊ एवं सीमांत भूमियों में की जाती है। खाद एवं उर्वरकों का इस्तेमाल लेशमात्र किया जाता है जिससे किसानों को कम उपज प्राप्त होती है। सामान्य भूमियो में 5–6 टन गोबर की खाद को खेत में एक समान बिखेर कर जुताई कर देना चाहिए। इसके अलावा बुवाई के समय 60 किग्रा. नाइट्रोजन, 40 किग्रा. फास्फोरस और 20 किग्रा. पोटाश प्रति हैक्टयर की दर से कतार में देना लाभप्रद पाया है।

सिंचाई एवं खरपतवार नियंत्रण

खरीफ में बोई गई रामदाने की फसल में सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। रबी एवं जायद में बोई जाने वाली फसल में 3–4 सिंचाईयों की आवश्यकता होती है। फूल और दाना बनते समय खेत में पर्याप्त नमी रहने से उपज में बढ़ोत्तरी होती है। वर्षा ऋतु के समय खेत से में जल निकास की व्यवस्था अवश्य होना चाहिए। बुवाई के 5–6 दिन बाद खेत में खरपतवार उग आते है जिनके नियंत्रण हेतु आवश्यकतानुसार निराई–गुड़ाई करनी चाहिए।

ब. कूट्टू

बोने का समय तथा भूमि की तैयारी

जो भूमि सामान्यतः कम उपजाऊ व थोडी रेतीली होती है, इसकी फसल के लिए उपयुक्त पाई गई है। इसकी खेती के लिए रेतीली दोमट, दोमट भूमि जिसमें पानी के निकास का उपयुक्त प्रबन्ध हो, उचित रहती है। इसकी जड़ें भूमि से फास्फोरस ग्रहण करने में भी काफी सक्षम हैं जबकि अन्य फसलों में यह गुण नहीं या बहुत कम पाया जाता है। ज्यादा पानी वाली भूमि या वह स्थान जहाँ अधिक वर्षा होती है, इसके लिए उपयुक्त नहीं होती है क्योंकि इसके तने टूट जाते हैं जिससे पत्तियाँ व फूल सड़ जाते हैं। इसके अन्दर अम्लीय भूमि में उगने की क्षमता भी है।

बीज दर और फसल ज्यामिति

इसकी बुआई बीज छिटकर या फिर हल के पीछे पंक्तियों में डालकर की जाती है। बुआई का तरीका चाहे कोई भी हो परन्तु यह ख्याल रखना चाहिए कि बीज 2–3 इंच से गहरा नहीं डालना चाहिए। एक हैक्टेयर खेत के लिए लगभग 40–50 किलो बीज काफी होता है। बुआई करते समय यह भी ध्यान रखें कि इसकी दो लाइनों के बीच की दूरी 30 सेन्टीमीटर और पौधे से पौधे की दूरी 8–10 सेन्टीमीटर से कम नहीं रहनी चाहिए। इसके बीजों के उगने की क्षमता काफी सालों तक बनी रहती है लेकिन फिर भी अच्छी फसल के लिए एक साल से ज्यादा पुराना बीज प्रयोग में नहीं लाना चाहिये। बुआई के लिए किसानों द्वारा संग्रहित बीज ही प्रयोग में लाया जाता है लेकिन पिछले कुछ समय से इसकी उपजाऊ प्रजातियाँ जैसे कि 'हिमप्रिया','हिमगिरी','वी0 एल0 7', के 'बी0 बी0–3', इत्यादि विकसित की गई हैं। इनके प्रयोग से इसकी अच्छी उपज ली जा सकती है। सामान्यतः भारत में उगल की बुआई मानसून के आने में शुरू होती है। तथा अगस्त के महीने तक चलती रहती है। परन्तु बुआई का समय एक स्थान से दूसरे स्थान तथा जलवायु विविधता के अनुसार बदलता रहता है। कम ऊँचाई वाले क्षेत्रों में इसकी बुआई मई से अगस्त तक की जाती है जबकि अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में अप्रैल से मई का महीना बुआई के लिए उपयुक्त है।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों में उगल की बुआई का समय

क्षेत्र	बुआई का समय
उत्तर–दक्षिण हिमालयी क्षेत्र	जून–जुलाई (वर्षा ऋतु) और मार्च–अप्रैल (वसंत ऋतु)
उत्तर पूर्वी हिमालयी क्षेत्र (आसाम को सम्मलित करते हुये)	अगस्त–सितम्बर, (सिक्किम में अक्टूबर–नवम्बर)
नीलगिरि पहाड़ी (तमिलनाडू)	अप्रैल–मई
पलानी पहाड़ी (तमिलनाडू और केरल)	जनवरी
छत्तीसगढ़	सितम्बर–नवम्बर

खरपतवार नियंत्रण एवं सिंचाई

सामान्यतया उगल एक बहुत अच्छी खरपतवार प्रतिरोधी फसल है फिर भी विभिन्न उत्पादन चक्रों को फसल की प्रारंभिक आवस्था में खरपतवार नियंत्रण बहुत महत्वपूर्ण हैं। उगल की मुख्य खरपतवार प्रजाति उगल के फसल में पाये जाने वाले प्रमुख खरपतवार *डिजीटेरीस एंगयूनालिस* है जो कि हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराखण्ड में पायी जाती है। इसी तरह सिक्किम व उत्तरपूर्वी हिमालय क्षेत्रों में पाये जाने वाली प्रमुख खरपतवार *अमरेन्थस रैक्रोफ्रेसस्, एमरोसिया टेनिसीफोलिया,* तथा *चिनोपोडियम एलबम* है।

बुआई के 15–20 दिनों बाद तथा फिर 35–40 दिनो बाद खरपतवार निकाल देने चाहिए क्योंकि इस समय फसल छोटी होती है। इसके बाद पौधे बड़े हो जाते हैं और खरपतवार इनके नीचे नहीं पनप पाते। इसे सिंचाई की आवश्यकता नहीं

होती है क्योकि यह पहाड़ी क्षेत्रों में ज्यादातर बरसात के मौसम में उगाया जाता है। जब पौधे 5–6 सैन्टीमीटर के लगभग हो जाऐ तो थीनिंग (घने पौधों को निकालना) करके पौधे से पौधे की दूरी 10–15 सेन्टीमीटर कर देनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

इस फसल को ज्यादा खाद की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि यह कम उपजाऊ भूमियों पर भी आसानी से बढ़ती है। अच्छी उपज लेने के लिए खेत तैयार करते समय 25–30 क्विंटल सड़ी हुई गोबर की खाद डालनी चाहिए और बाद में 20 किलो नाइट्रोजन, 20 किलो फास्फोरस व 20 किलो पोटाश देनी चाहिए। अधिक मात्रा में नाईट्रोजन (यूरिया) देने से पौधों में ज्यादा पत्ते लगते हैं जिससे उनके गिरने का भय रहता है ओर बीज भी कम बनता है। फास्फोरस को यह फसल आसानी से खपा लेती है और इससे शुष्क पदार्थ की मात्रा बढ़ती है।

कदन्न फसलों एवं कूट फसलों का कटोई–उपरान्त प्रबन्धन

कदन्न फसलो का कटोई–उपरान्त प्रबन्धन एक अत्यन्त मुश्किल प्रक्रिया है जो इन फसलों के क्षेत्रफल में गिरावट का एक मुख्य कारण भी हैं। थ्रैशिंग (तड़ाई) एक अत्यन्त परिश्रम वाला कार्य है जो पर्वतीय क्षेत्रों में मुख्यतः महिला कृषको द्वारा किया जाता हैं। इस समस्या को दूर करने के लिए विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा द्वारा एक विशेष थ्रेशर और पर्लर का निर्माण किया गया है। यह विवेक मिलेट थ्रेशर सभी कदन्न फसलों की गहाई के लिए उपयुक्त है। इस थ्रेशर द्वारा मंडुवा की थ्रैसिंग और पर्लिंग एक साथ की जाती है जबकि मादिरा, कौणी और चीड़ा की थ्रैसिंग अलग अलग की जाती है। मंडुवा के सन्दर्भ में इस की गहाई क्षमता 60 से 80 किलो ग्राम प्रति घंण्टा तथा पर्लिंग कि क्षमता 80 से 100 किलो ग्राम प्रति घण्टा मापी गई है। इस मशीन के दो मॉड़ल विकसित किये गये हैं। पहला बिजली से चलता है तथा दूसरा इंजन से चलता है। यह मशीन कदन्न फसलों के कटाई उपरान्त प्रबन्धन में अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुई है।

रामदाने की फसल की लगभग 90–100 दिन में तैयार हो जाती है। बालियाँ हल्की पीली पड़ने पर कटाई कर लेनी चाहिए। बिलंब से काटने पर दाने झड़ने लगते है। अच्छी प्रकार सुखाने के बाद मड़ाई कर दाना साफ कर लें। सामान्यतौर पर रामदाने की औसतन 15–16 क्विंटल प्रति हैक्टयर तक दानों की उपज प्राप्त होती है। उन्नत शस्य विधियों का अनुसरण करते हुए 20–25 क्विंटल प्रति हैक्टयर तक उपज ली जा सकती है। बुवाई के 30 दिन बाद पत्तियाँ हरी सब्जी के रूप में इस्तेमाल अथवा बाजार में बेच कर मुनाफा अर्जित किया जा सकता है।

रामदाने में दाना पहले बाली के नीचे तरफ बनता है तथा बाद में बाली के ऊपरी हिस्से में बनता है, जैसे ही बाली के ऊपरी हिस्से में दाना पूर्णतया विकसित हो जाए तो बाली की तुरन्त कटाई कर लेनी चाहिए अन्यथा वर्षा आने पर तथा हवा चलने पर काफी मात्रा में दाने झड़ सकते हैं। अगर बाली में रोएँदार कांटे हैं तो बाली को सुखाकर ही मड़ाई करें। वी0एल0 चुआ 44 प्रजाति की बाली में काँटे नहीं होते अतः कटाई के तुरन्त बाद इस प्रजाति की मड़ाई करने से दाना सुगमतापूर्वक निकलता है। मड़ाई के पश्चात दानों को 3–4 दिनों तक अच्छी धूप में सुखाकर ही भण्डारण करें अन्यथा

दानो में नमी होने के कारण दाना अंकुरित हो कर खराब हो जाता है। इस प्रकार वैज्ञानिक तौर–तरीकों को अपनाकर पर्वतीय कृषक रामदाने की भरपूर उपज लेकर आर्थिक सुदृढ़ता प्राप्त कर सकते हैं।

उगल की फसल एक साथ नहीं पकती है इसलिये कटाई करने में विशेष ख्याल रखना पड़ता है। जब लगभग 70–75 ग्राम प्रतिशत फसल तैयार हो जाए तो कटाई शुरू कर देनी चाहिए क्योंकि यदि पकी हुई फसल को काटने में देरी हो जाए तो बीज गिरना शुरू हो जाते हैं। पैदावार में 10–20 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है। ठीक ढंग से लगाई गई फसल से किसान भाई 7–8 क्विंटल उपज ले सकते हैं जबकि वैज्ञानिक ढंग से इसकी उपज 10–12 क्विंटल तक बढ़ाई जा सकती है।

निष्कर्ष

संक्षेप मे इन फसलों के उत्पादन एवं प्रचलन के लिए निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना अति आवश्यक हैं।

1 उन्नत प्रजातियों का उपयोग,

2 खरपतवार नियंत्रण,

3 बीज उत्पादन को बढ़ावा देना, तथा वितरण की उचित व्यवस्था,

4 इन अनाजो का उचित दाम तथ बिक्री हेतु सुलभ बाजार,

5 मूल्य संवर्धित उत्पादो को बढ़ावा देना, तथा

6 कदन्न फसलों के प्रोसेसिंग इकाइयों के प्रशिक्षण व प्रदर्शन को उपलब्ध करवाना।

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु धान उत्पादन की उन्नत तकनीकी

जे.पी. आदित्य, अनुराधा भारतीय, मनोज परिहार एवं चन्दन महाराणा

भाकृअनुप–वि.प.कृ.अनु.सं, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

उत्तराखंड में धान की खेती लगभग 2.59 लाख हेक्टेयर क्षेत्रफल में की जाती है, जिससे 6.26 लाख टन उत्पादन प्राप्त होता है तथा यहाँ धान की औसत उत्पादकता 2,416 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर है। राज्य का अधिकतर (86 प्रतिशत) भौगोलिक क्षेत्र पर्वतीय भाग है, केवल 14 प्रतिशत भौगोलिक क्षेत्र मैदानी भाग है तथा पवतीय और मैदानी इलाकों में कृषि योग्य भूमि क्रमशः 56.8 प्रतिशत और 43.2 प्रतिशत है। मैदानी क्षेत्रों में केवल सिंचिंत अवस्था में धान की खेती की जाती है जबकि पर्वतीय क्षेत्रों में सिंचित (तलाऊँ) तथा असिंचिंत (उपराऊँ) दोनों अवस्थाओं में इसकी खेती की जाती है। पर्वतीय क्षेत्रों की तुलना में मैदानी भागों में धान का क्षेत्रफल, उत्पादन तथा उत्पादकता तीनों ही ज्यादा है और यह भाग हरित क्रान्ति के दौरान दी जा रही तकनीकी सुख–सुविधाओं का साक्षी रहा है। हालाँकि मैदानी तथा पर्वतीय भागों में धान के क्षेत्रफल में बहुत ज्यादा अंतर नहीं है परन्तु मैदानी क्षेत्रों में उत्पादन एवं उत्पादकता पर्वतीय क्षेत्रों की तुलना में दोगुना से भी ज्यादा है। इसका मुख्य कारण शत प्रतिशत सिंचाई की सुविधा, उन्नत प्रजातियों का प्रयोग, मिट्टी की उच्च उर्वरक क्षमता है जबकि इसके विपरित 90 प्रतिशत पर्वतीय क्षेत्र वर्षाश्रित है, पर्वतीय क्षेत्रो की मिट्टी की उर्वरक क्षमता भी कम होती है साथ ही यहाँ उन्नत प्रजातियो का प्रयोग भी कम है। फसल को अक्सर जैविक तथा अजैविक दोनो तनावो का सामना करना पडता है, परिणामस्वरूप यहॉ धान की कम तथा अस्थिर पैदावार दिखाई देती है। पर्वतीय क्षेत्रो के लिए भाकृअप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा का धान की उन्नतशील किस्मों के विकास में विशेष योगदान रहा है तथा अभी तक संस्थान द्वारा धान की 27 प्रजातियाँ विकसित की जा चुकी है जिसमें सिंचित तथा असिंचित (वर्षाश्रित उपराऊँ) दोनों दशाओं की प्रजातियाँ शामिल हैं।(सारणी 1)

सारणी 1: पर्वतीय क्षेत्रों हेतु वि.प.कृ.अ.स.,अल्मोड़ा द्वारा विकसित धान की सिंचित एवं असिंचित प्रजातियाँ

क्र. सं.	प्रजाति	अधिसूचित वर्ष तथा विमोचित	अनुमोदित क्षेत्र
1.	वी. एल. धान 8	1978 रा.प्र.वि.स.	सिंचित रोपाई उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र
2.	वी. एल. के. धान 39	1982 रा.प्र.वि.स.	सिंचित रोपाई उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र
3.	वी. एल. धान 206	1985 रा.प्र.वि.स.	उत्तराखण्ड के वर्षाश्रित उपराऊॅ (चैती धान) पर्वतीय क्षेत्र
4.	वी. एल. धान 16	1985 रा.प्र.वि.स.	सिंचित रोपाई हेतु उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र
5.	वी. एल. धान 163	1988 रा.प्र.वि.स.	उत्तराखण्ड के वर्षाश्रित उपराऊॅ (जेठी धान) पर्वतीय क्षेत्र
6.	वी. एल. धान 221	1991 के.प्र.वि.स.	उत्तराखण्ड एवं हिमाचल प्रदेश के वर्षाश्रित उपराऊॅ (जेठी धान) पर्वतीय क्षेत्र
7.	वी. एल. धान 61	1998 के.प्र.वि.स.	सिंचित रोपाई हेतु उत्तराखण्ड एवं हिमाचल प्रदेश के पर्वतीय क्षेत्र
8.	वी. एल. धान 81	1999 के.प्र.वि.स.	सिंचित रोपाई हेतु उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश तथा मेघालय के पर्वतीय क्षेत्र
9.	विवेक धान 62	2001 के.प्र.वि.स.	सिंचित रोपाई हेतु उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश,

			मणिपुर तथा पश्चिम बंगाल के पर्वतीय क्षेत्र
10.	विवेक धान 82	2001 के.प्र.वि.स.	सिंचित रोपाई हेतु उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश तथा मेघालय के पर्वतीय क्षेत्र
11.	वी. एल. धान 207	2006 रा.प्र.वि.स.	उत्तराखण्ड के वर्षाश्रित उपराऊँ (चैती धान) पर्वतीय क्षेत्र
12.	वी. एल. धान 208	2006 रा.प्र.वि.स.	उत्तराखण्ड के वर्षाश्रित उपराऊँ (चैती धान) पर्वतीय क्षेत्र
13.	विवेक धान 154	2006 रा.प्र.वि.स.	उत्तराखण्ड के वर्षाश्रित उपराऊँ (जेठी धान) पर्वतीय क्षेत्र
14.	वी. एल. धान 85	2006 रा.प्र.वि.स.	सिंचित रोपाई हेतु उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र
15.	वी. एल. धान 209	2007 रा.प्र.वि.स.	उत्तराखण्ड के वर्षाश्रित उपराऊँ (चैती धान) पर्वतीय क्षेत्र
16.	वी. एल. धान 65	2007 रा.प्र.वि.स.	सिंचित रोपाई हेतु उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र
17.	वी. एल. धान 86	2007 के.प्र.वि.स.	सिंचित रोपाई उत्तराखण्ड एवं हिमाचल प्रदेश का पर्वतीय क्षेत्र
18.	वी. एल. धान 87	रा.प्र.वि.स. द्वारा 2010 में विमोचित	सिंचित रोपाई हेतु उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र
19.	वी. एल. धान 68	2014 के.प्र.वि.स.	सिंचित रोपाई हेतु उत्तराखण्ड तथा मेघालय के पर्वतीय क्षेत्र
20.	वी. एल. धान 157	2014 के.प्र.वि.स.	उत्तराखण्ड तथा मेघालय के वर्षाश्रित उपराऊँ (जेठी धान) पर्वतीय क्षेत्र
21.	वी. एल. धान 156	2016 रा.प्र.वि.स.	उत्तराखण्ड के वर्षाश्रित उपराऊँ (जेठी धान) पर्वतीय क्षेत्र
22.	वी. एल. धान 158	2017 के.प्र.वि.स.	उत्तराखण्ड तथा हिमाचल प्रदेश के वर्षाश्रित उपराऊँ (जेठी धान) पर्वतीय क्षेत्र
23.	वी. एल. धान 159	2021 रा.प्र.वि.स.	उत्तराखण्ड के वर्षाश्रित उपराऊँ (जेठी धान) पर्वतीय क्षेत्र
24.	वी. एल. धान 88	2021 के.प्र.वि.स.	सिंचित रोपाई उत्तराखण्ड, हिमाचल प्रदेश तथा मेघालय का पर्वतीय क्षेत्र
25.	वी. एल. सिक्किम धान 4	2021 रा.प्र.वि.स.	सिंचित रोपाई हेतु सिक्किम के पर्वतीय क्षेत्र
26.	वी. एल. धान 210	रा.प्र.वि.स. द्वारा 2020 में विमोचित	उत्तराखण्ड के वर्षाश्रित उपराऊँ (चैती धान) पर्वतीय क्षेत्र
27.	वी. एल. धान 211	रा.प्र.वि.स.द्वारा 2020 में विमोचित	उत्तराखण्ड के वर्षाश्रित उपराऊँ (चैती धान) पर्वतीय क्षेत्र

पर्वतीय क्षेत्रों में सिंचित धान की खेती घाटियों में की जाती है जहाँ सिंचाई की सुविधा नदी द्वारा उपलब्ध हैं। असिंचित अवस्था में धान की खेती दो प्रकार से की जाती है। प्रथम, जिसकी बुवाई मार्च के अंतिम सप्ताह से लेकर अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक की जाती है जिसे चैती या चेतकी धान कहते हैं तथा दूसरी, जिसकी बुवाई जून के प्रथम पखवाड़े में की जाती है जिसे जेठी धान कहते हैं। भाकृअप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा, द्वारा विकसित वर्षाश्रित उपराऊँ चैती धान की उन्नत प्रजातियाँ है–वी.एल. धान 207, वी.एल. धान 208, वी.एल. धान 209, वी.एल. धान 210 तथा वी.एल. धान 211, वर्षाश्रित उपराऊँ जेठी धान की प्रजातियाँ है–विवेक धान 154, वी.एल. धान 156, वी.एल. धान 157, वी.एल. धान 158 एवं वी.

एल. धान 159, सिंचित धान अगेती प्रजाति में मुख्य प्रजाति है–विवेक धान 82, वी.एल. धान 85, वी.एल. धान 86 तथा वी.एल. धान 88 तथा सिंचित धान मध्यम प्रजातियों में विवेक धान 62, वी.एल. धान 65 तथा वी.एल. धान 68 मुख्य हैं। इन प्रजातियों का संक्षिप्त विवरण सारणी 2 में दिया गया है।

सारणी 2: पर्वतीय क्षेत्रों हेतु धान की प्रमुख उन्नतशील प्रजातियों का संक्षिप्त विवरण

धान के प्रकार	अनुमोदित किस्में	प्रमुख विशेषतायें
सिंचित अगेती किस्में	विवेक धान 82	पौधे की ऊंचाईः 120–125 से.मी., दानाः छोटा–मोटा, पकने की अवधिः 115–120 दिन, पैदावारः 45–50 कु./है.
	वी. एल. धान 85	पौधे की ऊंचाईः 110–115 से.मी., दानाः हल्का पीला लम्बा–मोटा, पकने की अवधिः 118–120 दिन, पैदावारः 45–50 कु./है.
	वी. एल. धान 86	पौधे की ऊंचाईः 115–120 से.मी., दानाः छोटा–मोटा एवं धुसर पीला, पकने की अवधिः 115–120 दिन, पैदावारः 45–50 कु./है.
	वी. एल. धान 88	पौधे की ऊंचाईः 110–130 से.मी., दानाः लम्बा–मोटा, पकने की अवधिः 115–120 दिन, पैदावारः 45–50 कु./है.
सिंचित मध्यम अवधिवाली किस्में	विवेक धान 62	पौधे की ऊंचाईः 110–115 से.मी., दानाः छोटा–मोटा, पकने की अवधिः 125–130 दिन, पैदावारः 45–55 कु./है.
	वी. एल. धान 65	पौधे की ऊंचाईः 125–130 से.मी., दानाः मध्यम पतला, पकने की अवधिः 125–130 दिन, पैदावारः 45–55 कु./है.
	वी. एल. धान 68	पौधे की ऊंचाईः 110–120 से.मी., दानाः लम्बा मोटा, पकने की अवधिः 125–130 दिन, पैदावारः 40–45 कु./है.
वर्षाश्रित उपराऊॅ जेठी धान	विवेक धान 154	पौधे की ऊंचाईः 100–110 से.मी., दानाः मध्यम मोटा, पकने की अवधिः 110–110 दिन, पैदावारः 20–25 कु./है.
	वी. एल. धान 156	पौधे की ऊंचाईः 95–100 से.मी., दानाः लम्बा पतला, पकने की अवधिः 115–120 दिन, पैदावारः 20–25 कु./है.
	वी. एल. धान 157	पौधे की ऊंचाईः 95–110 से.मी.,

		दानाः छोटा मोटा, पकने की अवधिः 100–110 दिन, पैदावार रू 20–25 कु./है.
	वी. एल. धान 158	पौधे की ऊंचाईः 107–124 से.मी., दानाः छोटा मोटा, पकने की अवधिः 110–120 दिन, पैदावारः 20–25 कु./है.
	वी. एल. धान 159	पौधे की ऊंचाईः 95–105 से.मी., दानाः छोटा मोटा, पकने की अवधिः 110–115 दिन, पैदावारः 20–25 कु./है.
वर्षाश्रित उपराऊॅ चैती धान	वी. एल. धान 207	पौधे की ऊंचाईः 100–110 से.मी., दानाः छोटा मोटा, पकने की अवधिः 155–160 दिन, पैदावारः 15–20 कु./है.
	वी. एल. धान 208	पौधे की ऊंचाईः 100–110 से.मी., दानाः छोटा मोटा, पकने की अवधिः 160–165 दिन, पैदावारः 19–21 कु./है.
	वी. एल. धान 209	पौधे की ऊंचाईः 110–120 से.मी., दानाः छोटा मोटा, पकने की अवधिः 155–160 दिन, पैदावारः 18–20 कु./है.
	वी. एल. धान 210	पौधे की ऊंचाईः 95–110 से.मी., दानाः ज्यादा लम्बा पतला, पकने की अवधिः 140–150 दिन, पैदावारः 20–25 कु./है.
	वी. एल. धान 211	पौधे की ऊंचाईः 100–110 से.मी., दानाः छोटा मोटा, पकने की अवधिः 140–150 दिन, पैदावारः 20–25 कु./है.

बीज दर

सिंचित क्षेत्रों में एक नाली की रोपाई हेतु नर्सरी तैयार करने के लिए 800–900 ग्राम बीज (40–45 कि.ग्रा./है.) मोटी प्रजातियों के लिए, 700–800 ग्राम बीज (35–40 कि.ग्रा./है.) मध्यम मोटी प्रजातियो के लिए तथा 500–600 ग्राम बीज (25–30 कि.ग्रा./है.) पतले एवं बासमती प्रजातियों वाले धान के लिए पर्याप्त होता है।

असिंचित क्षेत्रों उपराऊ में जेठी या चैती धान के लिए पंक्तियों में बुवाई हेतु बीज दर 100 कि.ग्रा./है. (2.00 कि.ग्रा./नाली) उपयुक्त होता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी लगभग 20 से.मी. (8 इंच) रखना चाहिए। कूंड की गहराई 4–5 से.मी. (1.5–2.0) इंच होनी चाहिए। छिटकवाँ विधि से बुवाई करने पर बीज दर 125 कि.ग्रा./है. (2.5 कि.ग्रा./नाली) रखनी चाहिए।

अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए सदैव उच्च गुणवत्ता युक्त बीजों का चयन करना चाहिए तथा क्षेत्र के लिए अनुमोदित किस्म की ही बुवाई करनी चाहिए।

नर्सरी की बुवाई एवं क्षेत्रफल

सिंचित धान के लिए नर्सरी की बुवाई रोपाई से 20–25 दिन पहले की जाती है। नर्सरी की बुवाई 25 मई से 25 जून तक कर देनी चाहिए। मध्यम अवधि वाली प्रजाति की नर्सरी पहले (25 मई से 10 जून) डालनी चाहिए तथा अगेती प्रजाति की नर्सरी थोड़ी देर से (10 जून से 25 जून तक) भी डाल सकते है लेकिन जब भी नर्सरी डाले उसके 20–25 दिन बाद पौध की रोपाई कर देनी चाहिए, क्योंकि ज्यादा पुरानी नर्सरी लगाने से पैदावार में कमी आती है।

नर्सरी की बुवाई हेतु क्षेत्रफल के चयन के लिए जितने क्षेत्रफल में रोपाई करनी है उसके 8 या 10 प्रतिशत क्षेत्रफल में नर्सरी की बुवाई करनी चाहिए। एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 800 या 1000 वर्ग मीटर क्षेत्र में नर्सरी लगाई जाती है। अगर 1 नाली यानि 200 वर्ग मीटर में रोपाई करना है तो 16 या 20 वर्ग मीटर में नर्सरी की बुवाई करनी चाहिए।

पर्वतीय क्षेत्रों में नर्सरी की बुवाई मुख्यतः दो विधियों से की जाती है 1. सूखी नर्सरी, एवं 2. गीली नर्सरी ।

1. सूखी नर्सरीः अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में यह विधि अपनानी चाहिए। अगर लगातार वर्षा होती है तो मध्यम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी यह विधि उपयुक्त है। इसमें खेत को शुष्क या नम अवस्था में तैयार करते हैं। तीन चार जुताई करके मिट्टी को भुरभुरी बना लें। खेत को समतल करने के पश्चात सवा से डेढ़ मीटर चौड़ाई एवं सुविधाजनक लम्बी तथा 20 से. मी. ऊँची क्यारियॉ बना लें। सिंचाई के लिए 30–40 से. मी. चौड़ी नाली बनायें। इसके बाद खाद मिलाकर 20 से. मी. की दूरी पर लाइन में 2 से. मी. की गहराई पर बीज की बुवाई करें। इसमें सूखा बीज, छिड़काव विधि या लाईन में बोते हैं तथा मिट्टी की एक पतली परत से ढक देते हैं। सूखी बेड को अक्सर सिंचित करते रहते हैं।
2. गीली नर्सरीः इस विधि द्वारा पौध तैयार करने के लिए खेत में पानी भरकर दो या तीन बार जुताई करते हैं ताकि मिट्टी लेहयुक्त हो जाये तथा खरपतवार नष्ट हो जाये। आखिरी जुताई के बाद पाटा लगाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए। बीज को 12 घंटे के लिए पानी में भिगोकर रखना चाहिए इसके बाद पानी से निकाल कर गीले बोरे से ढककर छांव मे 24 से 36 घंटे के लिए रखना चाहिए। बीच–बीच में पानी का छिड़काव बोरे के ऊपर करना चाहिए। एक दिन बाद जब मिट्टी की सतह पर पानी न रहे तब खेत को सवा से डेढ़ मीटर चौड़ी सुविधाजनक लम्बी क्यारियों में बाँट लें तथा उनमें अंकुरित बीजों को समान रुप से बिखेर कर बोना चाहिए। वर्षा के कारण अगर बीज पानी में डूब जायें तथा धूप रहे तो पानी निकाल देना चाहिए। ऐसा न करने पर बीज का जमाव प्रभावित होता हैं।

नर्सरी में खरपतवार नियंत्रण के लिए बुवाई से 1–3 दिन बाद ब्यूटाक्लोर 1.5 कि. ग्रा. सक्रिय अवयव प्रति हेक्टेयर का छिड़काव करना चाहिए। 1 नाली के लिए 16–20 वर्गमीटर की नर्सरी/क्यारी हेतु लगभग 10–20 कि.ग्रा. सड़ी गोबर की खाद, 200ग्रा. नाइट्रोजन, 120 ग्रा. फास्फोरस, 80–100ग्रा. पोटाश तथा 40–50 ग्राम जिंक सल्फेट की आवश्यकता पड़ती है नर्सरी को 20–25 दिन के बाद उखाड़ते समय नर्सरी बेड में पर्याप्त नमी सुनिश्चित करनी चाहिए जिसमें पौध/नर्सरी के जड़ को क्षति न पहुँचे।

रोपाई के लिए खेत की तैयारी

रोपाई हेतु खेत की अच्छी तैयारी के लिए दो बार सूखी जुताई करने के पश्चात खेत में 5 से 10 से.मी. पानी भर देना चाहिए एवं पुनः दो बार खड़े पानी में जुताई करनी चाहिए ताकि मिट्टी अच्छी प्रकार लेहयुक्त हो जाय। खड़े पानी में जुताई कर पाटा लगाने से रोपाई के लिए खेत की मिट्टी नरम हो जाती है तथा पानी ज्यादा समय तक खेत में रूकता है और खरपतवार का नियंत्रण होता है। सूखी गोबर की खाद तथा उर्वरकों की आधारीय खुराक अंतिम पाटा लगाने से पहले देनी चाहिए। पौध उखाडने से एक दिन पहले क्यारी में पानी भर दें एवं पौध सावधानी पूर्वक उखाड़ें। एक–एक पौधे को जमीन के स्तर से पकड़कर निकालने से पौधों को क्षति कम होती है। पौध की जड़ो से कीचड़ हटाने के लिए उनकी धुलाई सावधानी पूर्वक करें। रोपाई करते समय ऊँगली को पौधे की जड़ के नीचे की तरफ रखें एवं ऊँगली को जमीन में पहले जाने दें तथा पौधे को सीधा करके रोपाई करें। 20 से 25 दिन पुरानी पौध को नर्सरी से उखाड़कर रोपाई वाले खेत में 2 से 3 पौधों को एक साथ 3 से 4 से.मी. गहरा लगाना चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 20 से.मी. तथा पौध से पौध की दूरी 10 से 15 से.मी. रखनी चाहिए।

रोपाई के लिए खाद एवं उर्वरक की मात्रा

सिंचित धान की अच्छी उपज के लिए 10 टन सड़ी गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर या 2 कु. प्रति नाली की दर से खेत में जुताई के समय डाल देना चाहिए। उर्वरकों का प्रयोग वैसे तो मृदा परीक्षण के आधार पर करना उपयुक्त रहता है परन्तु मृदा परीक्षण न करा पाने की दशा में प्रति हेक्टेयर के लिए 100 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस और 40 कि.ग्रा. पोटाश अथवा प्रति नाली के लिए 2 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 1.2 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 800 ग्राम पोटाश की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए प्रति नाली 4.5 कि.ग्रा. यूरिया, 7.5 कि.ग्रा. एस.एस.पी. तथा 1.3 कि.ग्रा. म्यूरेट आफ पोटाश का उपयोग कर सकते हैं। आजकल सिंचित क्षेत्रों में जिंक की कमी के लक्षण भी दिखाई देने लगे हैं अतः इसके लिए 25 कि. ग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से जिंक सल्फेट भी प्रयोग करना चाहिए।

नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस, पोटाश एवं जिंक की पूरी मात्रा रोपाई से पहले खेत में अच्छी तरह मिला लेनी चाहिए। नाइट्रोजन की शेष आधी मात्रा कल्ले निकलते तथा बाली बनते समय छिड़क देना चाहिए।

कल्ले (टिलरिंग) तथा बाली बनते समय जब नाइट्रोजन का प्रयोग करें तो ध्यान रहे कि खेत में पानी खड़ा न हो। यदि है तो पहले पानी निकाल दें फिर नाइट्रोजन डालें और 24 घंटे बाद तक खेत में पानी न लगायें। धान के लिए नत्रजन यूरिया के रुप में अच्छी रहती है। नत्रजन सायंकाल में डालना चाहिए।

यदि किसी कारणवश खेत में पौध लगाते समय जिंक सल्फेट नहीं डाला गया है तो इसका छिड़काव भी किया जा सकता है। जिंक को रोपाई के 7–10 दिन बाद प्रयोग करना चाहिए। इसके लिए तीन छिड़काव 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 2 प्रतिशत यूरिया के घोल से करना चाहिए। पहला छिड़काव रोपाई के एक महीने बाद करें। बाकी दो छिड़काव 15–15 दिन के अन्तराल पर करें।

असिंचित क्षेत्रों उपराऊँ में जेठी या चैती धान के लिए गोबर अथवा कम्पोस्ट खाद को 100–150 कुन्तल प्रति हैक्टेयर (2.0–3.0 कुन्तल प्रति नाली) की दर से खेत में जुताई के समय डाल देना चाहिए। धान की फसल में उर्वरकों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना उपयुक्त रहता है परन्तु मृदा परीक्षण ना करा पाने की दशा में जेठी धान हेतु प्रति हैक्टर 60 कि.ग्रा. नत्रजन, 30 कि.ग्रा. फास्फोरस एवं 20 कि.ग्रा. पोटाश (प्रति नाली 1.2 कि.ग्रा. नत्रजन, 0.6 कि.ग्रा. फास्फोरस एवं 0.4 कि.ग्रा. पोटाश) तथा चैती धान हेतु प्रति हैक्टर 40 कि.ग्रा. नत्रजन, 30 कि.ग्रा. फास्फोरस एवं 20 कि.ग्रा. पोटाश (प्रति नाली 0.8 कि. ग्रा. नत्रजन 0.6 कि.ग्रा. फास्फोरस एवं 0.4 कि.ग्रा. पोटाश) की आवश्यकता होती है। नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा बुवाई से पहले खेत में अच्छी तरह मिला लेनी चाहिए। नत्रजन की शेष आधी मात्रा को दो बार में बराबर–बराबर क्रमशः कल्ले फूटते समय तथा बाली बनते समय छिड़क देना चाहिए।

सिंचाई प्रबन्धन

सिंचित धान में रोपाई के 15 दिन बाद तक खेत में 3–4 से.मी. पानी खड़ा रखें, जिससे पौधों का जमाव व जड़ें विकसित होती हैं एवं खरपतवारों के नियंत्रण में सहायता मिलती है। धान में पानी लगाने की क्रांतिक अवस्थायें रोपाई के समय, कल्ले फूटते समय, बाली निकलते समय, फूल निकलते समय तथा दाना बनने व दुग्धावस्था हैं, इन अवस्थाओं पर खेत में पानी बना रहना चाहिए। कल्ले फूटने के बाद व बाली निकलने के पहले तक खेत में पानी खड़ा रखने की आवश्यकता नहीं है, अतः इस दौरान पानी 10–15 दिन के अन्तराल पर दिया जा सकता है। इसके पश्चात खेत में पानी के समाप्त होने के एक या दो दिन पश्चात 5–7 से.मी. पानी देना ही उचित है।

खरपतवार नियंत्रण

सिंचित धान के खेत में 2–5 से.मी. पानी हमेशा बनाए रखने पर अधिक कल्ले बनते हैं एवं खरपतवार का नियंत्रण होता है। खेत की निराई–गुड़ाई उर्वरक डालने से पहले कर लेनी चाहिए अन्यथा उर्वरक का उपयोग खरपतवार भी कर लेते है। रोपाई से 2–3 दिन बाद 1.5 कि.ग्रा./हेक्टेयर की दर से ब्यूटाक्लोर का छिड़काव करना चाहिये। यदि छिड़काव हेतु स्प्रेयर नहीं है, तो दवा को रेत या मिट्टी में मिलाकर बराबर धान के खेत में डाल सकते हैं परन्तु इस दशा में खेत में पानी खड़ा होना चाहिये।

अंकुरण के बाद (खरपतवार की 2–5 पत्ती वाली अवस्था पर) बिसपाइरीबेक सोडियम 25 ग्रा. सक्रिय संघटक प्रति है. या 200 मि.ली. प्रति हेक्टेयर का पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

लम्बी अवधि की फसल होने के कारण चैती धान में केवल खरपतवारनाशी रसायनों के प्रयोग से इनका पूर्ण रूप से नियंत्रण सम्भव नहीं है अतः यांत्रिक विधि से खरपतवारों के नियंत्रण हेतु, इनकी सघनता के अनुसार 3–4 निराईयों की आवश्यकता एक माह के अन्तराल पर पड़ती है। प्रथम निराई–गुड़ाई, बुवाई के लगभग 30–40 दिन पश्चात अवश्य करें, तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार 20–25 दिन के अन्तराल पर निराई करें।

जेठी धान मे भी खरपतवारों की काफी समस्या होती है क्योंकि बारिश होने के बाद खरपतवारों की वृद्वि धान की फसल से ज्यादा तेजी से होती है खरपतवारों को यांत्रिक विधि से नियंत्रण हेतु इनकी सघनता के अनुसार 2–3 निराईयों की आवश्यकता

एक माह के अन्तराल पर पड़ती है। प्रथम निराई–गुड़ाई, बुवाई के लगभग 20–30 दिन पश्चात अवश्य करें, तत्पश्चात् आवश्यकतानुसार 20–25 दिन के अन्तराल पर निराई करें।

खरपतवारनाशी रसायनों में अंकुरण–पूर्व ब्यूटाक्लोर का 1.50 कि.ग्रा. सक्रिय संघटक प्रति हैक्टर (30 ग्राम. सक्रिय संघटक प्रति नाली) 750 लीटर पानी में घोलकर बुवाई के तुरन्त बाद छिड़काव करें, अंकुरण के बाद बिसपाइरीबक सोडियम 25 ग्रा. सक्रिय संघटक प्रति है. 750 लीटर पानी में घोलकर खरपतवार की 2–3 पत्ती वाली अवस्था पर छिड़काव करना चाहिए। खेत में पर्याप्त नमीं होने पर खरपतवारनाशी रसायन अधिक प्रभावी होते हैं।

मुख्य रोग तथा नियंत्रण

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में सिंचित तथा असिंचित (चैती तथा जेठी) धान में लगने वाली चार मुख्य बीमारियाँ हैं :

1. *झौंका (ब्लास्ट)*

यह रोग पत्ती, बालियों व तने की गांठों में लगता है। पत्तियों में प्रारम्भिक अवस्था में छोटे पिन के सिरे के बराबर धब्बे बन जाते हैं जो बाद में आँख या नाव का आकार ले लेते हैं। यह धब्बे किनारों में भूरे तथा बीच में राख के रंग के होते है। बालियों में रोग लगने पर बाली के निचले भाग पर धूसर बादामी या काले क्षतिस्थल बन जाते हैं जिससे यह भाग सड़ने लगता है। बालियों के निचले भाग या गर्दन के सड़ जाने से पूरी बाली टूट जाती है। तने की गाँठें भी इस रोग से प्रभावित होती हैं, जो रोग लगने पर काली पड़ जाती हैं जिससे पौधे टूट जाते हैं।

इसकी रोकथाम के लिए प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करना चाहिए तथा उर्वरकों विशेषकर नाइट्रोजन का संतुलित प्रयोग करना चाहिए। ट्राइसाइक्लोजोल फफूँदनाशी 0.6 ग्रा./ली. पानी की दर से या कार्बेन्डाजिम 1 ग्रा./ली. पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए।

2. *भूरी चित्ती (ब्राउन स्पाट)*

इस बीमारी का लक्षण जड़ को छोड़कर पौधों के सभी भागों पर पाये जाते है। इस रोग में पत्तियों पर गाढ़े भूरे या बैगनी रंग के छोटे बिन्दु से लेकर अंडाकार धब्बे दिखाई देते हैं।

इसकी रोकथाम के लिए अनुमोदित मात्रा में नाइट्रोजन का प्रयोग करें क्योंकि नाइट्रोजन की कमी से इस रोग की उग्रता बढ़ जाती है। थाइरम नामक दवा का 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करना चाहिए। खड़ी फसल में मैंकोजेब नामक दवा का 3 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर आवश्यकतानुसार छिड़काव 10 दिन के अन्तराल पर करना चाहिए।

3. *आभासी कण्ड (फाल्स स्मट)*

इस रोग में बालियों के कुछ दाने बड़े आकार के होकर प्रारम्भ में पीले से संतरी तथा बाद में जैतूनी हरे रंग के हो जाते हैं इस पर बहुत अधिक संख्या मे बीजाणु चूर्ण के रूप मे विद्यमान होते हैं।

इसकी रोकथाम के लिए अधिक रोग लगने वाले क्षेत्रों में कॉपर आक्सीक्लोराइड 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर पुष्पन के समय छिड़काव करना प्रभावी होता है। रोगी बालियों को कटाई से पूर्व सावधानी पूर्वक निकाल देने से भूमि में अगले वर्ष ली जाने वाली धान की फसल में इसके संक्रमण को कम किया जा सकता है।

4. *दानों का बदरंगपन (ग्रेन डिसकलरेशन)*

यह रोग बालियों के निकलने पर लगना प्रारम्भ होता है इसमें दानों पर भूरे–काले या अन्य रंग के छोटे–छोटे धब्बे बन जाते है। इस बीमारी की रोकथाम के लिए बालियों में प्रारम्भिक अवस्था में रोग लगने पर मैंकोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर एक या दो छिड़काव करना चाहिए। बुवाई के लिए रोग ग्रसित बीजों का प्रयोग न करें। बीजों को बुवाई से पहले सेरेसान दवा की 2.5 ग्राम मात्रा प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें।

5. *खैरा रोग*

यह रोग मिट्टी में जिंक (जस्ते) की कमी के कारण होता है तथा नर्सरी एवं रोपित फसल दोनों में आता है। इसमें पुराने पत्तों का रंग फीका पड़ना तथा जंग लगे भूरे धब्बों का दिखना इसकी विशिष्ट पहचान है, जिससे पौधों की बढ़वार रूक जाती है। यदि जिंक की आधारीय खुराक दी जा रही है, तो 500 ग्राम जिंक सल्फेट प्रति नाली (25 कि.ग्रा./हेक्टेयर) की दर से आवश्यकता पड़ती है। छिड़काव के लिए 100ग्रा. जिंक सल्फेट + 50 ग्रा. चूना/नाली (5 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट + 2.5 कि.ग्रा. चूना/हेक्टेयर) की दर से एक या दो छिड़काव करना चाहिए।

मुख्य कीट तथा नियंत्रण

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में लगने वाले मुख्य कीट है तना बेधक, पत्ती लपेटक तथा कुरमुला।

1. *तना बेधकः* इस कीट की सुडियाँ पौधों में तने के अन्दर घुसकर तने को खा जाती है जिसके कारण तने का मध्यम भाग सूख जाता है। यह डेड हार्ट लक्षण इस कीट के प्रकोप की विशिष्ट पहचान है। यदि यह कीट फसल को बाद की अवस्था में प्रभावित करता है तो बालियाँ सफेद दिखलाई पड़ती है एवं दानों की जगह भूसी (चैफ) बनती है। इसे सफेद बाली (व्हाइट इयर) लक्षण कहते है तथा बाली खींचने पर आसानी से पौधे से अलग हो जाती है।

इसकी रोकथाम के लिए क्लोरपायरीफॉस (20 प्रतिशत ई.सी.) नामक कीटनाशी दवा 2 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से इस कीट का नियंत्रण हो जाता है।

2. *पत्ती लपेटकः* पत्ती लपेटक कीट की सुडियाँ पत्ती के दोनों किनारों को रेशम जैसे धागों से आपस में लपेट देती है तथा उसके भीतरी भाग में बन्द रहकर पत्तियों के हरे रंग के पदार्थो (क्लोरोफिल) को चूसती रहती है जिसके कारण पत्तियों में सफेद धारियॉ पड़ जाती हैं

इसकी रोकथाम के लिए क्लोरपायरीफॉस (20 प्रतिशत ई.सी.) 2 मिली लीटर दवा प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।

3. *कुरमुलाः* इस कीट के सफेद रंग के गिडार जमीन के अन्दर रहते हुए ही पौधों की जड़ों को खाते रहते है। इसके चलते पौधा पीला पड़कर सूखने लगता है और खींचने पर आसानी से बाहर आ जाता है।

कुरमुले की समस्या के निदान के लिए वयस्क कीट तथा सफेद गिडार दोनों की ही रोकथाम आवश्यक है। प्रकाश प्रपंच (लाइट ट्रेप) के प्रयोग से वयस्कों को आकर्षित कर नष्ट किया जा सकता है तथा सफेद गिडार के नियंत्रण के लिए खेतो की बुवाई से पूर्व गहरी जुताई करने पर सफेद गिडार भूमि की उपरी सतह पर आ जाते है जिन्हें चिड़ियों द्वारा खाकर नष्ट कर

दिया जाता है तथा धूप से भी कुछ गिडार नष्ट हो जाते है। 200 ग्राम वेसिलस सीरियस नामक जीवाणु पाउडर प्रति नाली की दर से गोबर की सड़ी खाद में मिलाकर अन्तिम जुताई के समय खेतो में बिखेरने से भी कुरमुला का नियंत्रण किया जा सकता है। कीटनाशी दवा इमिडाक्लोरपिड 1 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में या क्लोरपाइरीफास 5 मिली लीटर प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर पौधों की जड़ों में डालना चाहिए। प्रथम गुड़ाई के समय फोरेट10 प्रतिशत दानेदार दवा की 25 कि.ग्रा. प्रति हेक्टेयर या आधा कि.ग्रा. प्रति नाली की दर से अच्छी प्रकार मिट्टी में मिला देनी चाहिए। इस बात का ध्यान रहे कि दवा मिलाने के 35 दिन बाद तक निकली हुई घास जानवरों को नहीं खिलानी चाहिए क्योंकि यह रसायन जहरीला होता है और पशुओं के लिए हानिकारक हो सकता है।

कटाई एवं मढ़ाई

फसल तैयार होने पर समय से कटाई कर लेनी चाहिए क्योकि देर से काटने पर दाने बालियों से झड़ने लगते है। कटाई के समय दाने में नमी 17 से 23 प्रतिशत होनी चाहिए। फसल काटने के उपरान्त इसे 3–4 दिन तक छोटी ढेरियों में रखने के उपरान्त मड़ाई करनी चाहिए।

भंडारण

भण्डार के लिए दानों को अच्छी तरह धूप में सुखाकर बोरों अथवा लोहे या टिन सीट के बने कुठलों में रखकर नमी रहित स्थान पर भंडारण करना चाहिए। भंडारण के लिए धान के दानों में नमी 13 प्रतिशत से ज्यादा नहीं होनी चाहिए। अधिक समय तक भंडारण करना हो, तो बीज को एल्यूमिनियम फास्फाइड से उपचारित कर भंडारण करना चाहिए।

पारंपरिक फसलों का प्रसंस्करण और मूल्यवर्धन

दीपिका गोस्वामी, मृदुला डी., हर्षद मंडगे

भाकृअनुप–केन्द्रीय कटाई–उपरान्त अभियांत्रिकी एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, लुधियाना, पंजाब

उत्तराखंड, भारत के संघ का 27वां राज्य, 9 नवंबर 2000 को उत्तर प्रदेश के 13 उत्तर पश्चिमी जिलों से बना था। यह राज्य देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का 1–61 प्रतिशत और कुल आबादी का 0.82 प्रतिशत है। इसका कुल भौगोलिक क्षेत्रफल 59,926 वर्ग किलोमीटर है, जिसमें से 37,999 वर्ग किलोमीटर (63.41) जंगल से आच्छादित है। उत्तराखंड हिमालय की मुख्य भूमि लहरदार भूभाग, सीढ़ीदार खेतों और कटाव प्रवण क्षेत्रों से बनी है।

यह प्रदेश कृषि जलवायुगत पारिस्थितिकी के दृष्टिकोण से निर्धारित जोन नम्बर 9 तथा जोन नम्बर 14 के अन्तर्गत आता है। जनपद ऊधमसिंहनगर, हरिद्वार के पूर्ण भाग एवं जनपद नैनीताल तथा देहरादून के आंशिक भाग मैदानी तराई एवं भाबर क्षेत्र हैं। इनके अतिरिक्त राज्य का शेष अंश पर्वतीय क्षेत्र है। यह राज्य समशीतोष्ण कटिबन्धीय क्षेत्र से हिमाच्छादित उत्तुंग पर्वतमालाओं तक विस्तीर्ण है। इस कारण केवल समुद्रतटीय जलवायु एवं ऊष्म मरूस्थलीय जलवायु के स्थानों को छोड़कर शेष सभी प्रकार की जलवायुगत विविधता प्रदेश में विद्यमान है। इसके फलस्वरूप प्रदेश भिन्न–भिन्न कृषि पारिस्थितिकीय दशाओं के सापेक्ष प्रभूत कृषिक विविधता से परिपूर्ण है। प्रदेश को कृषि–जलवायिक दृष्टि से समुद्र तल से ऊँचाई के आधार पर निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।

क्र0सं0	क्षेत्र	कृषि विविधता
1	तराई एवं भाबर क्षेत्र (1000 मीटर तक)	चावल, गेहूँ, गन्ना, मक्का, आम, लीची, दालें, तिलहन, सोयाबीन, आदि
2	निम्न हिमालयी क्षेत्र (1000 से 1500 मीटर तक)	चावल, गेहूँ, मोटे अनाज, दालें, सम शीतोष्ण फल, फूल एवं सब्जियाँ, आदि
3	मध्य हिमालयी क्षेत्र (1500 से 2400 मीटर तक)	रामदाना, कुट्टू, राजमा, आलू, जौ, मसाले तथा सगन्ध पादप, शीत जलवायु के फल, फूल एवं सब्जियाँ, आदि
4	उच्च हिमालयी/एल्पाइन क्षेत्र (2400 मीटर से अधिक)	औषधीय एवं सगन्ध पादप, आलू, चारागाह, शुष्क फल, आदि

वर्तमान में 6–98मिलियन हेक्टेयर भूमि कृषि के अधीन है जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का केवल 11.65 प्रतिशत है। इस राज्य में कुल कृषि क्षेत्र में से 54 प्रतिशत पहाड़ी कृषि के अंतर्गत आता है जबकि कुल सिंचित कृषि भूमि (540999 हेक्टेयर) का केवल 13 प्रतिशत (76228 हेक्टेयर) पहाड़ी कृषि के अंतर्गत आता है। इसलिए पहाड़ी क्षेत्र की खेती पूरी तरह वर्षा पर निर्भर है।

कृषि उत्तराखंड के लोगों का मुख्य व्यवसाय है। कुल आबादी में से 75 प्रतिशत से अधिक लोग या तो कृषि के मुख्य व्यवसाय या इससे सम्बन्धित क्रियाकलापों में लगे हुए हैं, जिसमे पारंपरिक निर्वाह अनाज की खेती का प्रभुत्व है। इनमें चावल, गेहूं, बाजरा, जौ, सभी प्रकार की दालें, सभी प्रकार के तिलहन और लगभग सभी प्रकार के फल मुख्य फसलें हैं। कृषि प्रणाली में कृषि फसलें, बागवानी, जड़ी–बूटी की खेती, चाय बागान की प्रथाएं और नर्सरी फल रोपण या पुनर्वनीकरण शामिल हैं।

रबी और खरीफ यहां के मुख्य फसल मौसम हैं। रबी का मौसम आम तौर पर नवंबर–दिसंबर से मार्च–अप्रैल तक होता है। लेकिन ऊंचाई वाले इलाकों में यह दिसंबर–जनवरी से मई–जून तक रहता है। रबी के मौसम के दौरान मुख्य फसलें गेहूं, जौ, राई, सरसों, मटर, चना और मसूर हैं। खरीफ मौसम की शुरुआत की अवधि भी अलग–अलग ऊंचाई के अनुसार बदलती रहती है। खरीफ मौसम की अवधि मई–जून से सितंबर–अक्टूबर तक होती है। लेकिन उच्च ऊंचाई वाले क्षेत्रों में यह अवधि जून–जुलाई से अक्टूबर–नवंबर तक रहती है। इस मौसम की मुख्य फसल चावल है। पहाड़ी इलाकों में पारंपरिक कदन्न भी बड़े पैमाने पर उगाई जाती है। कदन्न की फसलें ढलान वाली भूमि में उगाई जाती हैं, जिससे मिट्टी के कटाव को कम करने में मदद मिलती हैं।

मण्डलवार तथा मैदानी एवं पर्वतीय भाग में क्रापिंग पैटर्नस

क्र.सं.	फसल	मण्डल		उत्तराखण्ड		
		गढ़वाल	कुमांऊ	पर्वतीय	मैदानी	योग
1	चावल (खरीफ)	15.83	29.80	20.02	27.13	23.29
2	मक्का (खरीफ)	2.51	1.64	2.85	1.09	2.04
3	मण्डुवा (खरीफ)	10.33	9.22	17.99	0.04	9.74
4	सावां	7.10	2.57	8.64	0.02	4.68
5	रामदाना	1.11	0.05	1.01	0.00	0.55
6	अन्य धान्य (खरीफ)	0.17	0.09	0.23	0.00	0.13
7	कुल धान्य (खरीफ)	37.04	43.37	50.75	28.29	40.42
8	तोर/अरहर	0.64	0.02	0.57	0.00	0.31
9	उर्द (खरीफ)	1.71	0.57	1.88	0.19	1.10
10	मूंग	0.00	0.00	0.00	0.00	0.00
11	मोठ	0.00	0.00	0.00	0.00	0.00
12	गहत/ कुल्थी	1.47	0.72	1.98	0.00	1.07
13	भट्ट	0.21	0.93	1.10	0.00	0.60
14	अन्य दालें (खरीफ)	0.09	0.04	0.05	0.08	0.06
15	कुल दालें (खरीफ)	5.02	2.40	6.46	0.28	3.62
16	कुल खाद्यान्न (खरीफ)	42.06	45.77	57.21	28.57	44.04

17	गेहूं	27.81	34.99	28.44	35.41	31.65
18	ज़ौ	1.95	1.48	3.13	0.01	1.70
19	अन्य धान्य (रबी)	0.00	0.01	0.01	0.00	0.01
20	कुल धान्य (रबी)	29.76	36.48	31.59	35.42	33.35
21	चना	0.01	0.10	0.02	0.10	0.06
22	मटर	0.36	0.55	0.35	0.59	0.46
23	मसूर	0.53	1.27	1.58	0.16	0.93
24	अन्य दालें (रबी)	0.00	0.00	0.00	0.00	0.00
25	कुल दालें (रबी)	0.91	1.92	1.96	0.85	1.45
26	कुल खाद्यान्न (रबी)	30.67	38.40	33.55	36.27	34.80
27	चावल (ज़ायद)	0.00	2.25	0.00	2.62	1.20
28	कुल धान्य (ज़ायद)	0.00	2.26	0.00	2.63	1.21
29	उर्द (ज़ायद)	0.01	0.00	0.00	0.01	0.01

गेहूं (30–95 प्रतिशत) के बाद चावल (21–62 प्रतिशत) और रागी (10–74 प्रतिशत) सकल फसल क्षेत्र (जी.सी.ए.) के प्रतिशत के मामले में राज्य की प्रमुख फसलें हैं (कृषि निदेशालय, उत्तराखंड, 2009–10)। इसके अलावा, गन्ना (9–56 प्रतिशत) और छोटे कदन्न (5–37 प्रतिशत) भी सकल फसल क्षेत्र के बड़े प्रतिशत पर उगाए जाते हैं।

यहां मंडुआ (रागी), रामदाना/ चुआ (ऐमारैंथस)/ राजमा, ओगल/उड़द/मूंग/ नौरंगी (दाल का मिश्रण), गहत, भट्ट (सोयाबीन), लोबिया (फ्रेंच बीन्स), खीरा (ककड़ी), भांग (भांग) और अन्य फसलें, एक मिश्रण में उगाई जाती हैं जो उत्पादकता और मिट्टी की उर्वरता के रख–रखाव को अनुकूलित करने के लिए सूक्ष्म रूप से संतुलित है और विभिन्न घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तैयार है।

मिश्रित फसलों के अन्तर्गत क्षेत्रफल

क्र.सं.	फसल मिश्रण	मण्डल		उत्तराखण्ड		
		गढ़वाल	कुमांऊ	पर्वतीय	मैदानी	योग
1	मंडुवा+भट्ट	1089	9910	10999	0	10999
2	मंडुवा+चुआ	851	130	981	0	981
3	मंडुवा+उर्द	6283	3956	10239	0	10239
4	मंडुवा+गहत	1039	5026	6065	0	6065
5	गेहूं+मसूर	2721	2532	5253	0	5253
6	गेहूं+चना	49	153	202	0	202
7	गेहूं+जौं	0	0	0	0	0
8	जौं+चना	0	0	0	0	0

यह खुशी की बात है कि उत्तराखंड में दलहन की उपज 640 किलोग्राम/हेक्टेयर से 743 किलोग्राम/हेक्टेयर पाई गई। इसलिए भारत में 2009–10 के दौरान और उत्तराखंड में दलहन का उत्पादन 2000–2001 और 2009–10 के बीच प्रतिशत प्रति वर्ष की दर से बढ़ा है।

महत्वपूर्ण पारंपरिक फसलें

उत्तराखंड राज्य अपनी विशाल और विविध कृषि–जलवायु परिस्थितियों के कारण कई फसलों की खेती करता है। उनमें से कुछ महत्वपूर्ण पारंपरिक फसलें और उनके प्रसंस्करण और मूल्यवर्धन के पहलू नीचे दिए गए हैं।

1. कदन्न

कदन्न शब्द में कई छोटे आकार वाले अनाज शामिल हैं। इसमें पैनिकम जनजाति के पांच जेनेरा– पैनिकम, सेटारिया, इचिनोक्लोआ, पेनिसेटम और पासपेलम, क्लोरिडी जनजाति का एक जीनस, एलुसीन, और फेस्टुसी जनजाति का एक जीनस, एराग्रोस्टिस शामिल हैं। अनाज के आकार के आधार पर, कदन्न को "प्रमुख कदन्न", जिसमें ज्वार और बाजरा शामिल हैं और "गौण कदन्न", जिनमें रागी, मंडुआ, कंगनी, कोदो, चीना, सावा और कुटकी शामिल हैं, के रूप में वर्गीकृत किया गया है। कदन्न अन्य अनाजों की तुलना में फायदेमंद होते हैं क्योंकि ये आम तौर पर कम उपजाऊ मिट्टी और खराब परिस्थितियों जैसे तीव्र गर्मी और कम वर्षा के अनुकूल होते हैं। इसके अलावा ये छोटी अवधि के पौधे होते हैं। अधिकांश कदन्न में उत्कृष्ट भंडारण गुण होते हैं और इसे साधारण भंडारण सुविधाओं जैसे कि पारंपरिक अन्न भंडार में भी 4 से 5 साल तक रखा जा सकता है।

चूंकि कदन्न में सभी आवश्यक पोषक तत्व होते हैं (तालिका), इनका विभिन्न खाद्य उत्पादों जैसे अनाज और आटे के रूप में शिशु आहार, अल्पाहार भोजन, आदि के निर्माण में व्यावसायिक उपयोग की क्षमता है।

तालिकाः कदन्न और इनकी अनुमानित संरचना (प्रति 100 ग्राम)

घटक	प्रोटीन (ग्रा)	कार्बोहाइड्रेट्स (ग्रा)	वसा (ग्रा)	रेशा (मिग्रा)	खनिज (मिग्रा)	कैल्शियम (ग्रा)	फास्फोरस (मिग्रा)
ज्वार	10.4	72.6	1.9	1.6	1.6	25	222
बाजरा	11.6	67.,5	5.0	1.2	2.3	42	296
मंडुआ	7.3	72.0	1.3	3.6	2.7	344	283
चीना	12.5	70.4	1.1	2.2	1.9	14	206
कंगनी	12.3	60.9	4.3	8.0	3.3	31	290
कोदो	8.3	65.9	1.4	9.0	2.6	27	188
कुटकी	8.7	75.7	5.3	8.6	1.7	17	220
सावा	11.6	74.3	5.8	14.7	4.7	14	121
जौ	11.5	69.6	1.3	3.9	1.2	26	215
गेहूं	11.8	71.2	1.5	1.2	1.5	41	306
चावल	6.8	78.2	0.5	0.2	0.6	10	160

कदन्न प्रसंस्करण

बेकिंग

कई अध्ययनों ने ब्रेड, बिस्किट और अन्य स्नैक्स के उत्पादन के लिए विभिन्न स्तरों पर गेहूं के आटे में कदन्न और अन्य आटे को शामिल करने की संभावनाओं का संकेत दिया है।

बेकिंग, संवहन द्वारा कार्य करते हुए सूखी गर्मी, न कि विकिरण द्वारा, भोजन को लंबे समय तक, सामान्य रूप से ओवन में, अथवा गर्म राख या गर्म पत्थरों पर भी, पकाने की तकनीक है । यह न केवल रोटी के उत्पादन पर लागू होता है, , बल्कि उन सभी खाद्य उत्पादों पर लागू होता है जिनमें आटा मूल सामग्री है और जिस पर सीधे ओवन या हीटिंग उपकरण की दीवारों और/या ऊपर और नीचे से विकिरण द्वारा गर्मी लागू की जाती है। विशेष रूप से, यह ब्रेड, केक, पेस्ट्री और पाई, कुकीज और क्रैकर्स की तैयारी के लिए उपयोग किया जाता है जहां आटा मूल उत्पाद के लिए आवश्यक और प्रमुख घटक है।

ग्लूटेन–मुक्त होने के कारण, कदन्न ग्लूटेन–मुक्त उत्पादों, जो सीलिएक रोगियों के लिए आवश्यक हैं, में संभावित अनुप्रयोग पा सकते हैं।

एक्सट्रूजन

एक्सट्रूजन एक ऐसी प्रक्रिया है जो मिश्रण करने, पकाने, सानने, कतरनी, आकार देने और बनाने सहित कई इकाई संचालन को जोड़ती है। यह एक उच्च तापमान शॉर्ट–टाइम (एचटीएसटी) प्रक्रिया है जो सूक्ष्मजैविक संदूषण को कम करती है और एंजाइम को निष्क्रिय करती है। खाद्य उद्योग में कुशल निर्माण प्रक्रियाओं के रूप में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। भोजन में अनाज और प्रोटीन प्रसंस्करण के लिए एक्सट्रूजन तकनीक का उपयोग किया जाता है। पिछले दशक में प्रसंस्करण इकाइयाँ बहुत सरल होने से परिष्कृत उपकरणों में विकसित हुई हैं। एक्सट्रूजन प्रसंस्करण को पोषण रोधीतत्वों के स्तर को कम करने और प्रोटीन और स्टार्च की पाचनशक्ति को बढ़ाने के लिए उपयुक्त पाया गया है।

कदन्न और फलियां का उपयोग करके फाइबर और प्रोटीन से भरपूर, काफी अच्छे विस्तार सूचकांकों और बनावट गुणों के साथ एक्सट्रूडेड स्नैक्स का निर्माण किया जा सकता है। वसा के कम अनुपात के कारण कदन्न के एक्सट्रूडेड स्नैक्स को स्वस्थ नाश्ते के रूप में भी बढ़ावा दिया जा सकता है।

2. चौलाई

चौलाई जिसको रामदाना भी कहते हैं, का उत्पादन उत्तराखंड के उतरकाशी, रुद्रप्रयाग, टिहरी, अल्मोड़ा, पौड़ी तथा बागेश्वर जिलों में होता है। यह बहुत ही पौष्टिक होता है जिसके पत्तों तथा दानों का उपयोग खाने में विभिन्न व्यंजन बनाने में होता है। पुराने समय से पहाड़ी क्षेत्रों में उत्पादित की जाने वाली इस फसल में हाल में लोगों की रूचि बढ़ी है क्योंकि पाश्चात्य देशों में तथा देश में सेहत के प्रति जागरूक लोगों की इसके प्रति रूचि बढ़ी है तथा पिछले कुछ वर्षों में इसके दामों में वृद्धि आयी है।

चौलाई के पत्तों में अधिक मात्रा में प्रोटीन होता है तथा इनमे आयरन, जिंक, कैल्शियम, विटामिन जैसे पोषक तत्त्व भी अधिक मात्रा में होते है। चौलाई के पत्ते एंटीऑक्सिडेंट्स के भी स्रोत है। इस के दानों में भी मक्का, गेहूं, चावल से ज्यादा मात्रा में प्रोटीन पाया जाता है। इसलिए पहाड़ों में विशेषतः पोषण सुरक्षा के लिए यह एक अहम् स्रोत हो सकता है।

चौलाई का सेवन आमतौर पर पूरे भारत में किया जाता है। चौलाई के पौधों के सभी भाग जैसे पत्ते, कोमल अंकुर के तने और बीज खाने योग्य होते हैं और विभिन्न प्रकार की तैयारी के लिए उपयोग किए जा सकते हैं। पत्तेदार सब्जियों द्वारा दिए जाने वाले पोषण लाभ न केवल हमारे स्वास्थ्य के लिए बल्कि हमारी त्वचा और बालों के लिए भी बेहद फायदेमंद होते हैं। मुख्य रूप से गर्मी, सूखे, रोगों और कीटों के प्रतिरोध और बीजों और पत्तियों दोनों के उच्च पोषण मूल्य के कारण इसे एक आशाजनक खाद्य फसल के रूप में फिर से खोजा गया है। ये आयरन, कैल्शियम, जिंक, विटामिन सी और विटामिन ए जैसे प्रोटीन और सूक्ष्म पोषक तत्वों से भरपूर होते हैं। इसमें गैलिक एसिड, पी–हाइड्रॉक्सीबेन्जोइक एसिड और वैनिलिक एसिड जैसे कई एंटीऑक्सिडेंट्स की मात्रा अधिक होती है, जो बीमारी से बचाने में मदद कर सकते हैं। प्राचीन भारतीय, नेपाली, चीनी और थाई दवाओं में चौलाई के अर्क का उपयोग मूत्र संक्रमण, स्त्री रोग संबंधी स्थितियों, दस्त, दर्द, श्वसन संबंधी विकार, मधुमेह और मूत्रवर्धक के रूप में कई स्थितियों के इलाज के लिए किया गया है। एंटीऑक्सिडेंट, अणु जो मुक्त कणों के प्रभाव को कम करते हैं, कैंसर और अपक्षयी विकारों से सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण हैं, चौलाई में बहुतायत में हैं।

प्रसंस्कृत उत्पाद

चौलाई के प्रसंस्कृत उत्पाद पत्तियों के साथ–साथ तनों से भी प्राप्त किए जा सकते हैं। चौलाई के पत्तों को स्क्वैश और पकरवड़ा तैयार करने के लिए संसाधित किया जा सकता है। पत्तियों के स्क्वैश के लिए आम तौर पर आवश्यक सामग्री चौलाई के पत्ते, चीनी, साइट्रिक एसिड, पानी, स्ट्रॉबेरी एसेंस और सोडियम बेंजोएट हैं। पकरवाड़ा बनाने के लिए चौलाई के पत्ते, बेसन का आटा, चावल का आटा, मैदा, नमक, मिर्च पाउडर, हींग पाउडर, पानी और वनस्पति तेल हैं। सोया चंक्स, आलू, बड़ा प्याज, अदरक, लहसुन, हरी मिर्च, गरम मसाला, हल्दी पाउडर, काली मिर्च पाउडर, वनस्पति तेल, नमक, कॉर्नफ्लोर, मैदा और ब्रेड जैसी अन्य सामग्री के साथ चौलाई के तने को कटलेट में संसाधित किया जाता है। इसे पारंपरिक अचार बनाने की तकनीक का उपयोग करके अचार में भी संसाधित किया जा सकता है।

3. कुट्टू

कुट्टू एक अच्छे खाद्य स्रोत के रूप में पहचाना जाता है जो प्रोटीन, लिपिड, आहार फाइबर और खनिजों की सामग्री के कारण और अन्य स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले घटकों के संयोजन के कारण पौष्टिक रूप से मूल्यवान है। इसलिए, इसे संभावित कार्यात्मक भोजन के रूप में अधिक ध्यान दिया गया है। उच्च जैविक मूल्य वाले प्रोटीन स्रोतों में से एक है और इस की एमिनो एसिड संरचना और पोषण मूल्य अन्य अनाज से बेहतर है। इसमें जस्ता, तांबा, मैंगनीज, सेलेनियम, पोटेशियम, सोडियम, कैल्शियम और मैग्नीशियम जैसे खनिज होते हैं, साथ ही इसमें बी 1, बी 2, बी 3 और बी 6 जैसे विटामिन लेवोनोइड्स, पॉलीफेनोल्स, इनोसिटोल, कार्बनिक अम्ल, और उच्च आहार फाइबर भी होते हैं। ऐसा माना जाता है कि यह उच्च कोलेस्ट्रॉल, उच्च रक्तचाप, एथेरोस्क्लेरोसिस और मधुमेह जैसी बीमारियों की उत्पत्ति को रोक सकता है।

इसके बीजों का उपयोग भारत में पॉपिंग के लिए किया जाता है और इसकी खपत पॉपिंग भोजन के रूप में है। भारत के उत्तरी भाग में कुट्टू के आटे को आमतौर पर कुट्टू का आटा कहा जाता है, जिसका उपयोग मुख्य रूप से कुछ त्योहारों में उपवास के दौरान और भक्ति उद्देश्यों के लिए भी किया जाता है। कुट्टू के आटे का उपयोग बेकरी आइटम, पारंपरिक ब्रेड, पैनकेक आदि बनाने में भी किया जाता है।

4. भट्ट

भट्ट अथवा काला सोयाबीन (ग्लाइसिन मैक्स (एल.) मेरिल), फाबेसी परिवार, फैबोइडी उपपरिवार, ग्लाइसिन जीनस और सोजा सबजेनेरा से संबंधित है। हालांकि सदियों से काले सोयाबीन लोकप्रिय रूप से उपचारात्मक भोजन के रूप में प्रयोग किया जाता है, लेकिन इसके बीज के काला रंग, जो भारत में आसानी से स्वीकार्य नहीं है, के कारण इसकी क्षमता का अभी भी मूल्यांकन नहीं किया गया है । इसलिए इसकी खेती और खपत हिमालय की पहाड़ियों तक ही सीमित रही। काली सोयाबीन को इसकी उपज, पीले सोयाबीन की तुलना में बेहतर स्वाद और 3300–7500की ऊंचाई तक खेती करने की क्षमता के कारण पहाड़ियों में पसंद किया जाता है। इसके साथ–साथ, काले सोयाबीन घास की बेहतर गुणवत्ता और उच्च प्रोटीन प्रतिशत के साथ लंबे समय तक अपनी बीज व्यवहार्यता बनाए रखने की प्रवृत्ति रखते हैं।

उत्तराखंड में दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन बढ़ाने के लिए काले सोयाबीन, भीमल (ग्रेविया ऑप्टिवा) के पत्ते और गेहूं के दाने के संयोजन से युक्त पशुओं का चारा (पिंडा) तैयार करने का पारंपरिक ज्ञान भी है ।

पोषण गुणवत्ता

काला सोयाबीन पोषक तत्वों से भरपूर होता है । निम्लिखित तालिका में भट्ट के पोषक तत्वों और उनकी मात्रा की जानकारी दी गई है ।

पोषक तत्व	मात्रा
प्रोटीन (प्रतिशत)	32.1–39.8
वसा (प्रतिशत)	10.8–19.6
आहार फाइबर (प्रतिशत)	21.77–30.31
खनिज (प्रतिशत)	3.13–6.15
फॉस्फोरस (मिलीग्राम/100 ग्राम)	131–205
आयरन (मिलीग्राम/100 ग्राम)	6.4–13.9
पोटेशियम (मिलीग्राम/100 ग्राम)	1.64–2.16
सोडियम (मिलीग्राम/100 ग्राम)	181–200
जिंक (माइक्रोग्राम प्रति ग्राम)	90.4–139.4
तांबा (माइक्रोग्राम प्रति ग्राम)	14.6–50.8
मैंगनीज (माइक्रोग्राम/ ग्राम)	30.5–53.6
विटामिन बी (ग्राम/मिलीग्राम)	43–63.4
विटामिन बी1 (मिलीग्राम/किग्रा)	1.1–7.2
बी2 (मिलीग्राम/किग्रा)	1.2–1.6
बी3 (मिलीग्राम/किग्रा)	21.6–32.1
बी5 (मिलीग्राम/किग्रा)	6.6–23.8
बी6 (मिलीग्राम/किग्रा)	2.2–10.9

5. गहत/ कुल्थी

गहत/ कुल्थी (मैक्रोटिलोमा यूनिफ्लोरम (लैम) वर्डक) की खेती बड़े पैमाने पर, खासकर ऑस्ट्रेलिया, बर्मा, भारत और श्रीलंका के शुष्क क्षेत्रों में की जाती है । भारत में इसकी खेती मुख्य रूप से कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, ओडिशा, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, उत्तराखंड और हिमाचल प्रदेश की तलहटी में की जाती है। इसका उपयोग भारत में सब्जी व दाल के रूप में किया जाता है और इसे दक्षिण भारत में गरीब व्यक्ति की दलहनी फसल के रूप में जाना जाता है। इसके दाने का उपयोग मानव उपभोग के लिए 'दाल' के साथ–साथ तथाकथित 'रसम' बनाने में और मवेशियों के लिए एक केंद्रित चारा के रूप में भी किया जाता है। इसका उपयोग हरी खाद के रूप में भी किया जा सकता है। यह फसल आम तौर पर तब उगाई जाती है जब किसान समय पर बारिश के अभाव में कोई अन्य फसल बोने में असमर्थ होता है।

पोषक मान

अध्ययनों से पता चलता है कि गहत प्रोटीन (17.9), कार्बोहाइड्रेट (51.9.60.9), आवश्यक अमीनो एसिड और ऊर्जा का एक अच्छा स्रोत और कम वसा (0.58.2.00) वाली फसल है। यह लोहे, मोलिब्डेनम और आहार फाइबर (15.16%) का एक उत्कृष्ट स्रोत है। इसका ऊष्मीय मान 321.322 किलो कैलोरी/100 ग्राम है। इसमें धीमी गति से पचने योग्य स्टार्च भी होता है, जिसे मधुमेह के रोगियों द्वारा सेवन किए जाने पर कम पोस्टप्रैन्डियल ग्लूकोज प्रतिक्रिया देने वाला माना जाता है। अध्ययनों से पता चला है कि पूरे बीजों में लगभग 1.6 % टैनिन है।

राज्य में प्रसंस्करण और मूल्यवर्धन की स्थिति

हालाँकि, यदि हम प्रसंस्करण पहलू को देखें तो इस राज्य में वर्तमान में बहुत कम मध्यम और बड़े पैमाने की खाद्य प्रसंस्करण इकाइयाँ हैं, अधिकांश खाद्य प्रसंस्करण इकाइयाँ ग्राम और लघु उद्योग क्षेत्र में हैं और उनमें से अधिकांश अच्छा नहीं कर रही हैं। कई बीमार इकाइयां भी हैं। राज्य के गांवों में लगभग 48 फल और सब्जी डिब्बाबंदी इकाइयाँ हैं जो निष्क्रिय हैं। लगभग 24 इकाइयों को फिर से जीवंत करने की योजना है। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग क्षेत्र की एजेंसियों जैसे कुमाऊं मंडल विकास निगम, गढ़वाल मंडल विकास निगम, खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड, जाति विकास निगम, आदि और खाद्य प्रसंस्करण उद्योग को बढ़ावा देने वाली कुछ केंद्र सरकार की एजेंसियों को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं हैं।

अवसर

पर्याप्त पौष्टिक पोषक सुरक्षा एवं स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करने वाले मोटे अनाजों जैसे मंडुवा, रागी, रामदान, कुट्टू, झंगोरा, कौणी, गहत, आदि की सम्पन्न तबके के लोगों में तथा विदेश में माँग बढ़ रही है। इनके स्थानीय स्तर पर ही प्रसंस्करण एवं बेहतर विपणन सुविधाओं का विकास कर कृषकों को अधिक मूल्य दिलाया जा सकता है। इनसे कृषिक विविधता की सुरक्षा के साथ–साथ कृषकों की आमदनी भी बढ़ेगी।

यह सुस्थापित तथ्य है कि कृषि उत्पादों में मूल्यवर्द्धन करने से किसानों की आय के स्तरों में वृद्धि होती है। अतः उनके उत्पादन को प्रसंस्करण तथा अन्य मूल्य श्रृंखला क्रियाकलापों के साथ समेकित करना आवश्यक है। देश में कटाई–उपरान्त अवसंरचना अपेक्षित स्तर की न होने के कारण 15 से 30 प्रतिशत तुड़ाई उपरान्त क्षति हाती है (औद्यानिक उपजों, दुग्ध व अन्य शीघ्र नष्ट होने वाले खाद्य पदार्थों) जिसे कम करने हेतु तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन एवं प्रसंस्करण एक महत्वपूर्ण

घटक है। अतः यदि तुड़ाई उपरान्त क्षति के इस प्रतिशत को प्रभावी एवं उपयोगी अवस्थापना सुविधाओं (प्रसंस्करण) एवं दक्षता वृद्धि कर काफी हद तक कम किया जा सकता है। उल्लेखित तथ्यों के दृष्टिगत इस क्षेत्र में समुचित ध्यान दिया जा रहा है, जिसे और प्रभावी बनाये जाने की आवश्यकता है। जिससे कि उत्पादन एवं उपलब्धता के स्तर के बीच उत्पन्न अन्तर को कम किया जा सके तथा उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों ही लाभान्वित हो सके।

मूल्य संवर्द्धन एवं प्रसंस्करण के उद्देश्य

- ✓ राज्य के कृषकों की आय में वृद्धि करना ।
- ✓ खाद्य के समस्त घटकों यथा परम्परागत एवं जैविक उत्पादों, फल, सब्जियां, दलहन, तिलहन, दुग्ध व अन्य खाद्य पदार्थों का मूल्य संवर्द्धन करना।
- ✓ खाद्य प्रसंस्करण के क्षेत्र में रोजगार के नये अवसर पैदा करना।
- ✓ कृषकों को उनके उत्पादों का बेहतर मूल्य दिलाना।
- ✓ उपभोक्ताओं को उत्तम गुणवत्तायुक्त प्रसंस्कृत खाद्य उत्पाद उचित मूल्य पर उपलब्ध कराना।
- ✓ औद्यानिकी आधारित खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों का विकास कर राज्य के कृषकों को अन्य नगदी उद्यानिकी फसलों की खेती के लिए प्रेरित करना।

मूल्य संवर्द्धन एवं प्रसंस्करण हेतु रणनीति

- o राज्य सरकार द्वारा संचालित सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्र नीति–2015 का प्रभावी क्रियान्वयन किया जायेगा।
- o उद्यमियता विकास हेतु खाद्य प्रसंस्करण प्रशिक्षण केन्द्रों का सुदृढ़ीकरण।
- o प्रसंस्करण उद्योगों को कच्चे माल की निर्बाध आपूर्ति हेतु खाद्य के सभी घटकों का क्लस्टर आधारित उत्पादन किया जायेगा।
- o खाद्य के सभी घटकों के अन्तर्गत उत्पादन से उपभागों के बीच होने वाली तुड़ाई उपरान्त क्षति को कम करने एवं कृषकों को उचित मूल्य दिलाने के दृष्टिगत उचित भण्डारण, रख–रखाव एवं परिवहन हेतु आधारभूत अवस्थापना सुविधाओं का विकास किया जायेगा।
- o केन्द्र सरकार द्वारा स्थापित किये जा रहे मेगा फूड पार्क में स्थापित होने वाली प्रसंस्करण इकाईयों की स्थापना को प्रोत्साहित किये जाने हेतु राज्य सरकार द्वारा सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम क्षेत्र नीति–2015 के अतिरिक्त प्रदेश सरकार द्वारा समय–समय पर देय अन्य सुविधायें भी दी जायेंगी।

राज्य कृषि नीति 2018 ने निम्नलिखित दो बिंदुओं को भी एक उद्देश्य के रूप में निर्धारित किया है–

- परम्परागत फसलों, फल, सब्जियों, अनाज, तिलहन तथा दलहन के मूल्य सम्वर्द्धन, सुरक्षित भण्डारण करते हुये खाद्य प्रसंस्करण से जोड़ना।
- मोटे अनाज एवं पौष्टिक अनाज के उत्पादन, उपभोग, प्रसंस्करण मूल्यवर्द्धन को बढ़वा देकर विपणन की व्यवस्था करना।

निष्कर्ष

उत्तराखंड में कृषि–जलवायु विविधताएं बड़ी हैं और इसलिए राज्य को विभिन्न प्रकार की फसलें प्रदान की जाती हैं। राज्य की विविध कृषि–जलवायु परिस्थितियाँ बेमौसम सब्जियों और फलों के उत्पादन में अन्य राज्यों की तुलना में एक अद्वितीय लाभ के साथ–साथ प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त प्रदान करती हैं, जो बाजार में उच्च मूल्य प्राप्त करते हैं। उत्तराखंड अनाज, फलों, सब्जियों और मसालों की बड़ी किस्मों का उत्पादन करता है। प्रत्येक जोन के लिए उपयुक्त फसलों की पहचान राज्य के सामने बड़ी चुनौती है। भंडारण, प्रसंस्करण और पैकेजिंग सुविधाओं की कमी के कारण इस उत्पाद की एक बड़ी मात्रा बर्बाद हो जाती है। इस क्षेत्र को विकसित और मजबूत करने के लिए निजी क्षेत्र को शामिल करके और राज्य और केंद्र सरकार के सभी संबंधित विभागों और एजेंसियों के साथ समन्वय करके बैकवर्ड और फॉरवर्ड लिंकेज स्थापित किए जा सकते हैं। बाजरा मूल रूप से पानी की कमी के समय वैकल्पिक वैकल्पिक फसलों के रूप में उगाया जाता है और इसलिए, सरकार के साथ–साथ किसानों से भी इस पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता है।

राज्य योजना ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादन के बिंदुओं के करीब कृषि–प्रसंस्करण सुविधाएं स्थापित करने का प्रयास करती है, जिससे गैर–कृषि रोजगार को बढ़ावा मिलेगा। कृषि सहकारिता एवं ग्राम पंचायतें इस प्रयास में अग्रणी भूमिका निभा सकती हैं। कटाई के बाद प्रबंधन रणनीति के एक भाग के रूप में, अतिरिक्त रसद बुनियादी ढांचे को भी बनाने की आवश्यकता होगी। राज्य सरकार द्वारा की गई कुछ पहलें जैसे ग्रेविटी रोपवे, कृषि उत्पादों को रोड हेड एक्सेस प्रदान करने के लिए बड़े पैमाने पर किए जाने की आवश्यकता है। कृषि विपणन में अंतर को पाटने के लिए फसलोत्तर प्रौद्योगिकी और बुनियादी ढांचे में निजी निवेश को भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों हेतु दलहन उत्पादन की उन्नत तकनीकी

अनुराधा भारतीय, जे.पी. आदित्य एवं हेमलता जोशी

भाकृअनुप–वि.प.कृ.अनु.सं, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

दलहनी फसलें प्रकृति की महत्वपूर्ण देन हैं जो मानव जाति को पोषक खाद्य पदार्थ देने के अलावा मृदा को भी उपजाऊ बनाये रखती हैं। इन्ही विशेषताओं के कारण दलहनी फसलें टिकाऊ खेती का अति आवश्यक अंग है। विकासशील देशों की निरन्तर बढ़ती हुई आबादी के लिए केवल दलहनी फसलें ही प्रोटीन का मुख्य स्रोत हैं। दालों में लवणों जैसे कैल्शियम, पोटेशियम, फास्फोरस, आयरन, आदि की भी प्रचुरता होती है तथा दालें प्रोटीन की कमी एवं कुपोषण की समस्या को मिटा सकती हैं। वर्तमान में दलहन का कम उत्पादन होने की वजह से दालों की लगातार बढ़ती कीमतें आसमान छू रही हैं तथा आम आदमी की पहुँच से भी दूर हो रही है। दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भरता के लिए उत्पादन में कमी के कारणों को समझना तथा उनका निवारण करना अति आवश्यक है। पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में दलहन उत्पादन की स्थिति और भी अधिक चिंताजनक है जहाँ दलहन उत्पादन आवश्यकता के अनुरुप नहीं है। उतर पश्चिमी हिमालयी क्षेत्रों में उत्तराखण्ड प्रमुख दलहन उत्पादक राज्य है। सामान्यतः पर्वतीय क्षेत्रों में उत्पादित दालें अपने विशिष्ट स्वाद के लिये जानी जाती हैं तथा ऊँचे दामों पर बाजारों में विक्रय की जाती है। यहाँ की जलवायु तथा भोगौलिक परिस्थितियाँ विभिन्न प्रकार की दलहनी फसलों की काश्त के अनुकूल है इसके बावजूद उत्तराखण्ड एक दलहन की कमी वाला राज्य है जो कि अपनी आवश्यकता का केवल 15 प्रतिशत ही उत्पादित कर पाता है। उत्तराखण्ड में दलहनी फसलें 60 हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल में उगाई जाती हैं तथा जिसमें 58 हजार टन उत्पादन प्राप्त होता है। उत्तराखण्ड में दलहन की उत्पादकता 963 कि.ग्रा./हे. है तथा यहाँ दलहन उत्पादन को बढ़ाने की अपार संभावनाए हैं। कुछ वैज्ञानिक तकनीकें अपनाकर पर्वतीय क्षेत्रों में दलहन फसलों का अधिक उत्पादन प्राप्त किया जा सकता है तथा उत्तराखण्ड राज्य को दलहन उत्पादन में आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है।

उन्नत बीज

उन्नत बीज ही कृषि का मूलभूत आधार है। उन्नत बीजों में न केवल रोग व कीट प्रतिरोधक गुण होते हैं बल्कि ये पोषक तत्वों को भी भली–भाँति उपयोग करने में भी सक्षम होते हैं। उन्नत प्रजातियों के बीजों का प्रयोग उत्पादन बढ़ाने मे बहुत लाभकारी है क्योंकि ये स्थानीय किस्मों से अधिक पैदावार देने मे सक्षम होते हैं। अच्छी पैदावार के लिए अपने क्षेत्र विशेष के लिए अनुमोदित प्रजाति के प्रमाणित बीजों का प्रयोग करना हितकर होता है। विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, अल्मोड़ा ने दलहन फसलों की कई ऐसी प्रजातियाँ विकसित की हैं। उत्तराखण्ड की प्रमुख दलहनी फसलों की उन्नत प्रजातियों का विवरण सारणी 1 में दिया जा रहा है।

सारणी–1 उत्तराखण्ड की प्रमुख दलहनी फसलों की उन्नत प्रजातियाँ

फसल	उन्नत किस्में	अवधि	उपज (कुं/हे)
मसूर	वी एल मसूर 125	160 से 165 दिन	15 से 20
	वी एल मसूर 126	126–150 दिन (मध्यम ऊँचाई)	11 से 16
		195 से 205 दिन (अधिक ऊँचाई)	
	वी एल मसूर 129	145 से 150 दिन	7 से 11
	वी एल मसूर 133	153 से 158 दिन	10 से 16
	वी एल मसूर 507	140 दिन (मध्यम ऊँचाई)	9 से 16
		209 दिन (अधिक ऊचाई)	
	वी एल मसूर 514	154 से 159 दिन	8 से 12
	वी एल मसूर 148	147 से 163 दिन	11 से 12
मटर	वी एल मटर 42	145 से 155 दिन	10 से 14
	वी एल मटर 47	142 से 162 दिन	10 से 14
	वी एल मटर 61	150 से 155 दिन	8 से 12
गहत	वी एल गहत 8	115 से 135 दिन	9 से 12
	वी एल गहत 10	113 से 117 दिन	7 से 12
	वी एल गहत 15	92 से 106 दिन	6 से 10
	वी एल गहत 19	88 से 93 दिन	5 से 6
भट्ट	वी एल सोयाबीन 65	115 से 120 दिन	11 से 14
	वी एल भट्ट 201	115 से 120 दिन	14 से 16
	वी एल भट्ट 202	110 से 115 दिन	14 से 16
राजमाश	वी एल राजमा 63	70 से 75 दिन	10 से 12
	वी एल राजमा 125	73 से 98 दिन	11 से 12
अरहर	वी एल अरहर 1	125 से 130 दिन	16 से 20

बुवाई का समय

सही समय पर व सही विधि से बुवाई का कृषि में बहुत महत्व है। विलम्ब से बुवाई करने पर जमाव प्रभावित होता है फलस्वरुप उपज में गिरावट आती है। उत्तराखण्ड की प्रमुख दलहनी फसलों की बुवाई का उचित समय का विवरण सारणी 2 में दिया जा रहा है।

सारणी–2 उत्तराखण्ड की प्रमुख दलहनी फसलों की बुवाई का उचित समय

फसल	बुवाई का उचित समय
मसूर	अक्टूबर का दूसरा पखवाड़ा
मटर	अक्टूबर का दूसरा पखवाड़ा
गहत	जून का प्रथम पखवाड़ा
भट्ट	जून का प्रथम पखवाड़ा
राजमाश	मार्च का दूसरा पखवाड़ा (सिंचित अवस्था में)
	जून के दूसरे पखवाड़े से जुलाई (खरीफ फसल के लिए)
अरहर	मई के दूसरे पखवाड़े से जून का प्रथम सप्ताह

भूमि का चुनाव

दलहनी फसलों के अच्छे उत्पादन के लिए उपयुक्त भूमि का चुनाव भी आवश्यक है। दलहनी फसलों के खेती बलुई दोमट से लेकर चिकनी दोमट मिट्टी में भली भाँति की जा सकती है लेकिन जीवांशयुक्त हल्की दोमट मिट्टी दलहनी फसलों की खेती के लिए उपयुक्त है। लेकिन अगर दलहनी फसलों की खेती भारी मिट्टी पर करनी हो तो खेत की तैयारी अच्छी प्रकार से करना आवश्यक है। मिट्टी पलटने वाले हल से एक गहरी जुताई तथा इसके बाद देसी हल से भली प्रकार जुताई कर लेनी चाहिए और अच्छे जमाव के लिए मिट्टी को भुरभुरा बना लेना चाहिए तथा बाद में पाटा लगा लेना चाहिए ताकि भूमि पूरी तरह से समतल हो जाए। बुवाई के समय अच्छे जमाव के लिए मृदा में प्रर्याप्त नमी होनी चाहिए। जल की निकासी का भी अच्छा प्रबन्ध होना चाहिए।

बुवाई की विधि व बीज दर

बुवाई हमेशा लाइनों में ही करनी चाहिए तथा बुवाई के समय बीज दर का ख्याल रखना भी अति आवश्यक है क्योंकि बीज दर अधिक होने से पैाधे घने हो जाते हैं तथा पौधों में पोषक तत्वों, जल तथा सूर्य के प्रकाश के लिए संघर्ष होता है। पर्वतीय क्षेत्रों में किसान सामान्यतः बीजों की बुवाई छिटककर कर देते हैं जिससे न तो पैाधों के बीच के दूरी ठीक रह पाती है और न ही बीज की अनुमानित मात्रा में बुवाई हो पाती है। इससे न केवल बीज का खर्च अधिक आता है बल्कि पैदावार भी कम होती है और फसलों की निराई गुड़ाई भी ठीक से नहीं हो पाती है। बीज हमेशा उचित नमी पर 3 से 4 सें.मी. गहरा बोना चाहिए। विभिन्न दलहनी फसलों के लिए संस्तुत दूरी व बीज दर का विवरण सारणी 3 में दिया जा रहा है।

सारणी–3 उत्तराखण्ड की विभिन्न दलहनी फसलों के लिए संस्तुत दूरी व बीज दर

फसल	लाइन से लाइन की दूरी (से.मी.)	बीज दर (कि.ग्रा./है.)	रासायनिक खाद की मात्रा (कि.ग्रा./है.)
मसूर	25	30 से 40 (छोटे दाने वाली) 45 से 50 (बड़े दाने वाली)	20:40:20
मटर	30	75 से 80	20:60:40
गहत	45	20 से 25	20:40:00
भट्ट	45	75 से 80	20:80:40
राजमाश	45	75 से 80	100:80:40
अरहर	45	18 से 20	20:40:20

खाद तथा उर्वरको का प्रयोग

पर्वतीय क्षेत्रों में किसान सामान्यतः रासायनिक खादों का प्रयोग नहीं करते हैं अतः गोबर की सड़ी हुई खाद का प्रयोग पैदावार बढ़ाने में अत्यन्त लाभकारी है। गोबर की खाद बुवाई के लगभग एक माह पूर्व खेत की तैयारी के समय खेत में समान रुप से बिखेर कर जुताई करके मिला देना चाहिए ताकि उसका भरपूर लाभ फसल को मिल सके। एक हेक्टेयर के लिए 10 से 15 टन सड़ी गोबर की खाद दलहनी फसलों की खेती के लिए उपयुक्त है लेकिन सिंचित क्षेत्रों मे अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जा सकता है। रासायनिक खादों का प्रयोग मृदा परीक्षण के आधार पर करना सबसे उपयुक्त है। सभी रासायनिक उर्वरक बुवाई के समय खेत मे समान रुप से मिला लेने चाहिए। दलहनी फसलों का अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए रासायनिक खादों की संस्तुत दर का विवरण सारणी 3 में दिया गया है।

खरपतवार नियन्त्रण

फसल का खरपतवार मुक्त होना बहुत जरुरी है। वैज्ञानिक परीक्षणों से यह तथ्य सामने आया है कि यदि प्रारम्भिक अवस्था में फसल खरपतवार मुक्त होती है तो फसल का खरपतवारों से जल, सूर्य के प्रकाश एवं वायु के लिये संघर्ष नहीं होता जिससे उनकी बढ़ोतरी अच्छी प्रकार से होती है तथा अच्छी पैदावार भी मिलती है। बुवाई के समय 30 से 45 दिनों तक फसल को खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए। पर्वतीय क्षेत्रों में दलहन फसलों का अच्छा उत्पादन प्राप्त करने के लिए आवश्यकता अनुसार निराई–गुड़ाई करना लाभप्रद होता है।

रोग व कीट प्रबन्धन

फसलों में प्रोटीन की प्रचुरता होती है अतः इनमें कीटों व रोगों की भरमार होती है अतः समय–समय पर खेत में रोग व कीटों की उपस्थिति देखकर उन्हें नियंत्रित करने के लिए संस्तुत कीटनाशी व रोगनाशियों का छिड़काव अनुमोदित मात्रा में ही करना चाहिए।

कटाई–मड़ाई व भण्डारण

दलहनी फसलों में समय पर कटाई–मड़ाई का विशेष महत्व है। दलहनी फसल के खेत मे सूख जाने पर बीजों के झड़ने की आशंका बढ़ जाती है। जल्दी काटने पर दाने सिकुड़ जाते हैं तथा दानों में रंग भी ठीक से विकसित नहीं हो पाता है। जब तीन चौथाई फलियाँ पौधों पर पीली हो जाएं तब फसल की कटाई करनी चाहिए। कटाई सुबह करनी चाहिए क्योंकि फलियाँ ओस में नम बनी रहती हैं। कटाई के बाद पौधों को धूप मे तीन चार दिन अच्छी तरह सुखा कर मड़ाई कर लेनी चाहिए। बीजों को धूप मे अच्छी तरह सुखाने के बाद जब बीजों में नमी 10–12 प्रतिशत के करीब आ जाए फिर किसी नमी रहित स्थान पर भण्डारण कर लेना चाहिए।

उन्नत तकनीकें अपनाकर उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में दलहनी फसलों का अच्छा उत्पादन प्राप्त किया जा सकता हैं।

पारम्परिक फसलों में रोग प्रबन्धन

जीवन बी., चन्दन महाराना, जे.पी. गुप्ता एवं के.के. मिश्रा
भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

पर्वतीय क्षेत्रों में पारम्परिक फसलों में धान, मक्का, मंडुवा, मादिरा, रामदाना, उगल, सोयाबीन व अरहर आदि फसलें प्रमुखता से उगाई जाती हैं। यहाँ की जलवायु इन फसलों की अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिये अनुकूल है परन्तु फसलों में बीमारियों के प्रकोप से उत्पादन मे कमी होना एक प्रमुख कारण है। अतः फसल में लगने वाले विभिन्न रोगों की पहचान और उनके रोकथाम की जानकारी होना आवश्यक है।

धान में लगने वाले प्रमुख रोग

धान की फसल में झोंका अथवा प्रध्वंस, भूरी चित्ती, पर्णच्छद विगलन, पर्णच्छद अंगमारी, आभासी कंड, दानों का बदरंगापन एवं खैरा रोग का प्रकोप होता है।

धान में झौंका रोग के लक्षण एवं पहचान

धान में पहाड़ी क्षेत्रों में सर्वाधिक हानि पहुँचाने वाला रोग झौंका रोग है। यह रोग पत्ती, बालियों व तने की गांठो में लगता है। पत्तियों में प्रारम्भिक अवस्था में छोटे पिन के सिरे के बराबर धब्बे बनते जाते हैं जो बाद में आँख या नाव का आकार ले लेते हैं। यह धब्बे किनारों में भूरे तथा बीच में राख के रंग के होते हैं। ये धब्बे आपस में मिलकर पूरी पत्ती को झुलसा देते हैं एवं फसल जली हुई दिखाई देती है। रोग की इस अवस्था को पत्ती का झोंका रोग कहते हैं। दूसरी अवस्था में यह रोग गर्दन, पुष्पक्रम एवं गांठों पर लगता है। बालियों के निचले भाग पर धूसर बादामी या काले क्षतिस्थल बन जाते हैं, जिससे यह भाग सड़ने लगता है। बालियों के निचले भाग या गर्दन के सड़ जाने से पूरी बाली टूट जाती है। तने की गांठें इस रोग के प्रभाव से काली पड़ने लगती है और थोड़ी हवा चलने पर टूट जाती हैं।

प्रबंधन

इस रोग की रोकथाम के लिये रोग प्रतिरोधी या सहनशील किस्मों को लगाना सर्वोत्तम उपाय है। इन किस्मों में वी.एल. धान 154, वी.एल. धान 221, वर्षा पर आधारित खेती के लिये एवं सिंचित अवस्था में रोपित धान के लिए वी.एल. धान 61, विवेक धान 62,

विवेक धान 82, विवेक धान 85 आदि संस्तुत की गई हैं। उर्वरकों, विशेषकर नत्रजन का संतुलित प्रयोग करना चाहिए तथा खेत के आसपास सफाई रखनी चाहिये। कार्बेन्डाजिम अथवा एडिफेनफास दवा का (0.1 प्रतिशत) का छिड़काव करें। कम प्रकोप में मैंकोजेब (75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) दवा के 0.25 प्रतिशत घोल का छिड़काव भी प्रभावी रहता है। ट्राइसाइक्लाजोल (75 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) की 0.6 ग्रा. मात्रा का एक लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से रोग की उग्रता में काफी कमी आ जाती है।

धान में भूरी चित्ती रोग के लक्षण एवं पहचान

जड़ को छोड़कर पौधे के सभी भागों पर इस बीमारी के लक्षण पाये जाते हैं। इस रोग में पत्तियों पर गाढ़े भूरे या बैंगनी रंग के छोटे बिन्दु से लेकर अंडाकार धब्बे बन जाते हैं। बालियों में दानों के ऊपर भी भूरे से काले धब्बे दिखाई देते हैं।

प्रबंधन

रोगरोधी अथवा सहनशील किस्मों को लगाना चाहिए। नत्रजन की कमी से इस रोग की उग्रता बढ़ जाती है अतः अनुमोदित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग करें। स्वस्थ फसल में इस रोग का प्रकोप कम होता है। थिरम (75% डब्ल्यू.एस.) से 2.5–3.0 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करें। खड़ी फसल में मैंकोजेब (75% डब्ल्यू.पी.) का 2.5 ग्रा./ली. पानी में घोल (एक नाली के लिये 40 ग्रा. दवा का 15 ली. पानी में घोल) बनाकर आवश्यकतानुसार 8–10 दिन के अन्तराल पर छिड़काव करें। खेत के खरपतवारों को नष्ट कर दें, इन पर रोगकारक पनपते हैं।

आभासी कण्ड रोग के लक्षण एवं पहचान

इस रोग में बालियों के कुछ दाने बड़े आकार के होकर, प्रारम्भ में पीले से संतरी तथा बाद में जैतूनी हरे रंग के हो जाते हैं।

प्रबंधन

अधिक रोग लगने वाली किस्मों को न बोयें। अधिक रोग लगने वाले क्षेत्रों में कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 50% डब्ल्यू.पी. (0.25 से 0.3 प्रतिशत) या मैंकोजेब 75% डब्ल्यू.पी. (0.25 प्रतिशत) का फूल आने के बाद छिड़काव करना प्रभावी होता है। रोगी बालियों को कटाई से पूर्व सावधानीपूर्वक निकाल देने से भूमि में अगले वर्ष ली जाने वाली धान की फसल में इसके संक्रमण को कम किया जा सकता है।

मक्का की फसल के प्रमुख रोग

मक्का की फसल के मुख्य रोग टर्सिकम पर्ण झुलसा, मेडिस पर्ण झुलसा, धारीदार पत्ती एवं पर्णच्छद अंगमारी व तना गलन है।

टर्सिकम पर्णझुलसा रोग के लक्षण एवं पहचान

मक्का में पत्तियों का झुलसा एक प्रमुख रोग है। इस रोग से ग्रसित पत्तियों पर लम्बे तथा कुछ अंडाकार नाव के आकार के पीले भूरे रंग के धब्बे पड़ जाते हैं जो बाद में धूसर हो जाती हैं और अधिक प्रकोप होने पर पत्तियाँ झुलसकर सूख जाती हैं।

प्रबंधन

देर से बोई गई फसल (जून–जुलाई) ज्यादा प्रभावित होती है अतः रोगरोधी/सहनशील प्रजातियों की समय से बुवाई करके इस रोग के प्रभाव को कम किया जा सकता है। इन किस्मों में विवेक मक्का हाइब्रिड 9, विवेक क्यू. पी. एम. 9, विवेक मक्का हाइब्रिड 15, विवेक संकर मक्का 25, विवेक संकर मक्का 33, विवेक संकुल मक्का 31, विवेक संकुल मक्का 35, विवेक संकर मक्का 43 आदि प्रमुख हैं। बीज की बुवाई से पूर्व थिरम की 2.5 ग्रा. दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। इस रोग की रोकथाम हेतु मैंकोजेब 75% डब्ल्यू.पी. (0.25%) का छिड़काव करना चाहिए। फसल चक्र एवं रोगी अवशेषों को नष्ट करें।

मेडिस पर्ण झुलसा रोग के लक्षण एवं पहचान

मक्का की पत्तियों में शिराओं के मध्य में छोटे लम्बे बादामी भूरे रंग के धब्बे बन जाते है जिनके किनारे गहरे लाल भूरे होना इस रोग का प्रमुख लक्षण है।

प्रबंधन

रोगरोधी/सहनशील किस्मों की बुवाई करें। बीजों का उपचार थिरम की 2.5 ग्रा. दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। इस रोग की रोकथाम हेतु मैंकोजेब (0.25%) या जिनेब (0.2%) का छिड़काव 10 से 15 दिन के अंतर पर आवश्यकतानुसार करें। संक्रमित फसल अवशेषों को नष्ट करने से प्रारंभिक रोगकारकों को नष्ट किया जा सकता है।

धारीदार पत्ती एवं पर्णच्छद अंगमारी रोग के लक्षण एवं पहचान

यह रोग पत्ती, पर्णच्छद पर दिखाई देता है व भुट्टे तक फैल सकता है। संक्रमित पत्तियों और पर्णच्छद पर संकेन्द्रिय धारियाँ व छल्लियाँ इस रोग के विशिष्ट लक्षण हैं जो अण्डाकार तथा कुछ लम्बे पीले–भूरे, धूसर धब्बे से बनते हैं। विशिष्ट रूप से यह रोग जमीन से ऊपर पहली व दूसरी पर्णच्छद व पत्तियों पर दिखाई देता है एवं अंततः भुट्टे तक फैल जाता है तथा भुट्टे सड़ जाते हैं। भुट्टों में हल्के भूरे व सफेद कवकजाल बन जाते हैं एवं काले रंग के स्क्लेरोशिया दिखाई देते हैं तथा भुट्टे समयपूर्व सूख जाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर फसल जली–जली सी दिखाई देने लगती है। सघन बुवाई, अधिक तापक्रम एवं वर्षा रोग के फैलने में सहायक होते हैं।

प्रबंधन

उन्नत किस्मों में रोग का प्रकोप सामान्यतः कम होता है एवं ये रोग के लिए सहनशील होती हैं। मध्य ऊँचाई की पहाड़ियों में जून के तीसरे सप्ताह में बुवाई करने पर इस रोग का प्रकोप कम होता है। फसल चक्र अपनाने से मृदा में विद्यमान रोगकारक की मात्रा में कमी लाकर रोग को नियंत्रित करने में मदद मिलती है। बुवाई से पहले खेत से पानी निकाल दें व बुवाई उठी हुई क्यारी या मेड़ में करें। संक्रमित पौधों की निचली पत्तियों को पर्णच्छद सहित निकालकर नष्ट कर दें। 30 से 40 दिन की फसल में 0.1 प्रतिशत कार्बेंडाजिम का छिड़काव रोग को फैलने से रोकता है।

तना गलन रोग के लक्षण एवं पहचान

मक्के के पौधों के तने के निचले भाग पर हल्के गहरे भूरे रंग के धब्बे व सफेद कवक जाल का दिखाई देना इस रोग का प्रमुख लक्षण है। ये लक्षण तना गलन रोग के है, जो एक फफूँद *स्क्लेरोशियम रोल्फसाई* के द्वारा होती है। पिछले 2–3 सालों से यह रोग मक्का में देखने को मिल रहा है जो कि इस फसल में सामान्यतः नहीं आता है। पौधों के तने के निचले भाग पर इस रोग

का संक्रमण दिखाई देता है। संक्रमित स्थानों पर हल्के–गहरे भूरे रंग के धब्बे व सफेद कवकजाल दिखाई देते हैं एवं बाद में सरसों के दानों के बराबर असंख्य स्क्लेरोशिया बनते हैं। तने के आधार के आस पास की पर्णच्छद सड़ जाती है एवं इन धब्बों से तना सब तरफ से घिरकर सड़ जाता है।

प्रबंधन

फसल चक्र अपनाऐं क्योंकि इस रोग के रोगकारक मृदा में विद्यमान होते हैं। खेत में पानी का जमाव न होने दें व बुवाई उठी हुई मेड़ में करें।

मंडुवा और मादिरा में लगने वाले प्रमुख रोग

मंडुवा और मादिरा में झौंका या प्रध्वंस, पौध एवं पर्ण अंगमारी, आधार गलन, सर्कोस्पोरा पर्ण चित्ती आदि रोगों का प्रकोप होता है।

मंडुवा में झौंका रोग के लक्षण एवं पहचान

मंडुवा में झौंका रोग का प्रकोप पौध अवस्था से परिपक्वावस्था तक होता है। पत्तियों में आँख या नाव के आकार के हल्के भूरे धब्बे बन जाते हैं जो बीच में राख व किनारों पर भूरे रंग के होते हैं। बालियों की गर्दन (नेक) तथा उंगलियाँ (फिंगर्स) पूर्ण या आंशिक रूप से काले पड़ जाते हैं। प्रभावित भाग से बालियाँ टूट जाती हैं तथा अधिक प्रकोप होने पर पूरी बाली सूख सी जाती है जिससे उपज में अत्यधिक हानि हो जाती है।

प्रबंधन

रोगरोधी किस्में (वी.एल. मंडुवा 146, वी.एल. मंडुवा 149, वी.एल. मंडुवा 324, वी.एल. मंडुवा 347, वी.एल. मंडुवा 352) लगायें। प्रारंभिक अवस्था में रोग के लक्षण दिखाई देने पर मैंकोजेब (0.25%) या कार्बेन्डाजिम (0.1%) के छिड़काव प्रभावी हैं। इन कवकनाशी का छिड़काव 50 प्रतिशत पुष्पीकरण तथा पुनः 10 दिन बाद छिड़काव करना चाहिए। अधिक नत्रजन का प्रयोग न करें तथा खादों का संतुलित मात्रा में ही प्रयोग करें।

मंडुवा में लगने वाले पर्ण अंगमारी रोग लक्षण एवं पहचान

पौधों के वायवीय भागों अधिकतर पत्तियों में हल्के भूरे व अंडाकार धब्बे बनते हैं जो बाद में गहरे भूरे हो जाते हैं। ये धब्बे आपस में मिलकर पत्तियों में फैल जाते हैं। रोग पौध अवस्था से परिपक्वता तक कभी भी लगता है। संक्रमित पौधों में दानों का उचित विकास नहीं हो पाता जिससे उपज में कमी आती है।

प्रबंधन

उन्नतशील किस्मों का प्रयोग करना चाहिए। रोग का प्राथमिक संक्रमण मुख्य रूप से बीजोढ़ है जो बाद में वायु के माध्यम से फैलता है। इसके लिये बीजों को फफूंदीनाशक कार्बेन्डाजिम (50ः डब्ल्यू.पी.) की 2.0 ग्रा. दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करने तथा जरूरत अनुसार 0.25% मैंकोजेब (75% डब्ल्यू.पी.) के छिड़काव से रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

मादिरा की फसल के प्रमुख रोग

कंड व पर्ण चित्तीरोग के लक्षण एवं पहचान

मादिरा की फसल में कण्ड रोग के प्रकोप से दानों का अंडाशय संक्रमित होता है परन्तु बाली के सभी दानें प्रभावित नहीं होते हैं। रोगी दाने गोल और सामान्य से 2–3 गुना बड़े हो जाते हैं। वे गहरे हरे हो जाते हैं तथा गाँठों में पीठिका बनती हैं जिनके अन्दर काले बीजाणु भरे होते हैं।

प्रबंधन

रोगरोधी व सहनशील किस्मों को लगाना सर्वोत्तम है। वी.एल. मादिरा 172, वी.एल. मादिरा 207 लगाएं। कार्बेन्डाजिम (50% डब्ल्यू.पी.) की 2.0 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार तथा इसके 0.1% घोल का पुष्पन के दौरान छिड़काव करना लाभकारी होता है।

पर्ण चित्ती रोग में पत्तियों में छोटे–छोटे भूरे बिन्दु के रूप में प्रकट होकर बढ़ता है। ये धब्बे आपस में मिलकर लगभग आधे से. मी. चौड़ाई व 4–5 से.मी. लम्बाई तक हो जाते हैं। धब्बों का रंग भूरा–गन्दा सफेद सा होता है। अधिक धब्बे पूरी पत्ती को घेर लेते हैं जिससे पत्तियाँ जली सी दिखायी देती हैं। रोग सहनशील किस्मों का प्रयोग तथा जरूरत अनुसार मैंकोजेब (0.25%) का छिड़काव रोग को नियंत्रित करने में सहायक होता है।

रामदाना/चुआ के प्रमुख रोग

रामदाना/चुआ में मृदा जनिक रोग के लक्षण एंव पहचान

बुवाई के समय यदि खेत में पानी का उचित निकास न हो तो पानी के जमाव वाली जगह पर आर्द्र गलन की समस्या आती है। ऐसे में बीज जमीन के नीचे अंकुरण से पहले या अंकुरण के कुछ दिन बाद जमीन की सतह के पास से गलकर मर जाते हैं। कभी–कभी बड़े पौधों में भी जड़ सड़ने की समस्या हो जाती है। प्रभावित पौधों की जड़ों पर भूरे–काले धब्बे बन जाते हैं जो समय के साथ बढ़ जाते हैं और जड़ गल जाती है जिस कारण पौधे का उपरी भाग पीला पड़कर मुरझा जाता है।

प्रबंधन

आर्द्र गलन रोग के नियंत्रण हेतु यह सुनिश्चित कर लें कि खेत में पानी कहीं जमा न हो। साथ ही थिरम (75%डब्ल्यू.एस.) नामक फफूँदनाशी से 2.5 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार करना चाहिए। जड़ सड़न रोग के नियंत्रण हेतु प्रभावित क्षेत्रों में फसल के निचले भागों पर 0.1% कार्बेन्डाजिम के घोल का 15 दिन के अन्तराल पर एक से दो बार छिड़काव करें।

उगल के प्रमुख रोग

उगल में कॉलर गलन रोग के लक्षण एंव पहचान

ये लक्षण कॉलर गलन रोग के हैं, इस रोग में भूमि की सतह के पास भूरे से गहरे भूरे धब्बे पड़ना, रोगग्रस्त तने का पतला पड़ना व पूरे पौधे का मुरझा जाता हैं।

प्रबंधन

इसकी रोकथाम हेतु सहनशील किस्मों का प्रयोग करें। कार्बेन्डाजिम (50% डब्ल्यू.पी.) 2.0 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार करें। रोग के लक्षण दिखाई देने पर कॉलर वाले भाग को कार्बेन्डाजिम (0.1%) दवा के घोल से तर करें।

सोयाबीन के प्रमुख रोग

सोयाबीन में मेंढक की आंख सी/मंडुकाक्ष पर्णचित्ती/फ्रॉगआइ लीफ स्पाट रोग के लक्षण एवं पहचान

इस रोग को मेंढक की आंख सी/मंडुकाक्ष पर्णचित्ती/फ्रॉगआइ लीफ स्पाट रोग कहते हैं। पहाड़ों में सोयाबीन में यह रोग प्रमुखता से आता है। पत्तियों पर वलयाकार एवं वृत्ताकार चित्तियां या कभी–कभी कोणीय पर्णचित्तियां बन जाती हैं। ऐसी चित्तियां मध्य से सलेटी रंग की तथा किनारे से गहरी भूरी होती हैं और मेंढक की आँख जैसी प्रतीत होती हैं इसलिए इस बीमारी को मेंढक की आंख वाली पर्णचित्ती (फ्रॉगआइ लीफ स्पाट) कहते हैं। ये धब्बे तेजी से फैलते हैं एवं पत्तियों में छेद हो जाते हैं व समय से पहले गिर जाती हैं।

प्रबंधन

फसल चक्र व सफाई का विशेष ध्यान रखें तथा फसल के अवशेष दबा दें। प्रतिरोधी या सहनशील किस्मे लगाएं जैसे वी.एल. सोया 47, वी.एल. सोया 63, वी.एल. सोया 65, वी.एल. सोया 76 आदि। थिरम (75% डब्ल्यू.एस.) की 2.5 ग्रा. दवा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार करें। खड़ी फसल में रोग दिखायी देने पर कार्बेन्डाजिम (0.1%) या मैंकोजेब (0.25%) का 10–15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें।

सोयाबीन के श्यामवर्ण व फली अंगमारी रोग के लक्षण एवं पहचान

पौधों के सम्पूर्ण वायवीय भागों (पत्तियों तथा फलियों) को प्रभावित करता है। अंकुरण के समय बीजपत्र पर भूरे रंग के धंसे हुए धब्बे दिखाई देते हैं। फलस्वरूप रोगग्रस्त भाग या कभी–कभी पूरा पौधा ही मर जाता है। पत्तियों एवं फलियों पर भूरे गोल धंसे हुए धब्बे पड़ जाते हैं। उग्र संक्रमण होने पर पत्तियाँ समय से पूर्व गिर जाती हैं। फलियों पर संक्रमण से दाने कम बनते हैं जो भूरे, छोटे एवं सिकुड़े होते हैं।

प्रबंधन

रोग के नियंत्रण हेतु रोगरोधी/सहनशील किस्में बोयें। अगेती बीजाई में संक्रमण कम होता है। बीज उपचार थिरम (75% डब्ल्यू.एस.) की 2.5 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से करें। खड़ी फसल में कार्बेन्डाजिम (0.1%) या मैंकोजेब (0.25%) का छिड़काव करें।

सोयाबीन की फसल में जीवाणु जनित रोग के लक्षण एवं पहचान

सोयाबीन की फसल में जीवाणु स्फोट एक प्रमुख जीवाणु जनित रोग है। इसमें पत्तियों पर गहरे भूरे रंग के छोटे–छोटे स्फोट बन जाते हैं जो बड़े होकर सारी पत्ती पर फैल जाते हैं तथा पत्तियां पीली पड़कर गिर जाती है। स्फोट बीच में उभरे हुए होते हैं।

प्रबंधन

इसके नियंत्रण हेतुरोगरोधी प्रजातियों के स्वस्थ बीज का प्रयोग करें। बीज का प्रमाणीकरण ऐसे खेतों से करें जहां इस रोग का संक्रमण कम से कम देखा गया हो। बीज अंकुरण के 35–40 दिन बाद या रोग लक्षण दिखाई देने पर एग्रीमाइसीन 100 की 3 ग्रा. तथा कॉपर ऑक्सीक्लोराइड के 20 ग्रा. मिश्रण को 20 ली. पानी में मिलाकर प्रति नाली छिड़काव करें।

अरहर के प्रमुख रोग

अरहर में म्लानि रोग के लक्षण एवं पहचान

पौधों की निचली पत्तियाँ पीली होकर सूखने लगती है और यह रोग ऊपर की तरफ बढ़कर पूरे पौधे को सुखा देता है। यह पौधों में पानी व अन्य तत्वों के संचार को रोक देता है। पौधे के निचले भाग में तने में खाल के नीचे गहरी भूरी कवक की धारियाँ दिखाई देती हैं एवं तने को फाड़कर देखा जाय तो भीतरी भाग भूरा दिखाई पड़ता है। फूल आते समय व फलियाँ बनते समय सबसे ज्यादा पौधे सूखते या मरते हैं। जब मुख्य जड़ संक्रमित होती है तब पूरा पौधा सूख जाता है।

प्रबंधन

इसके रोकथाम हेतु गर्मियों में गहरी जुताई करें। रोगरोधी या सहनशील किस्मों जैसे वी.एल. अरहर 1 के स्वस्थ बीज बोयें। पानी का समुचित निकास, उचित फसल चक्र व बीज उपचार करें। रोगी पौधों को हटाकर नष्ट करें। 2.5 ग्रा. थिरम या कार्बेन्डाजिम या दोनों के मिश्रण (1:1) से अथवा संयुक्त कवकनाशी कार्बोक्सिन + थिरम के 4.0 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार करें। जैविक नियंत्रण हेतु ट्राइकोडर्मा विरिडि/ट्राइकोडर्मा हार्जियानम के 5–10 ग्रा. पाउडर प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार कर सकते हैं।

गहत के प्रमुख रोग

श्यामवर्ण रोग के लक्षण एवं पहचान

पत्तियों की शिराओं के साथ काले–भूरे धब्बे बनते हैं जिससे शिरायें गल जाती हैं। निचली सतह पर धब्बे अधिक स्पष्ट होते हैं।

प्रबंधन

रोगरोधी/सहनशील किस्में जैसे वी.एल. गहत 8, वी.एल. गहत 10, वी.एल. गहत 15, वी.एल. गहत 19 आदि उगायें। मैंकोजेब 0.25% का छिड़काव प्रभावी है।

ग्रामीण रोजगार उन्नयन का सफल मॉडलः आजीविका

कैलाश चन्द्र भट्ट

आजीविका परियोजना, उत्तराखंड

मानव जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में रोटी, कपड़ा और मकान मुख्य हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु रोजगार की आवश्यकता होती है। रोजगार या आजीविका ही वह माध्यम है जिसके द्वारा अर्जित धन को मानव द्वारा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यय किया जाता है।

बढ़ती आबादी के साथ मानव समुदाय को रोजगार की उपलब्धता में काफी कमी आयी है। रोजगार की उपलब्धता कम होने के कारण कई तरह की सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का जन्म हुआ है, जिससे समाज के विकास की गति में प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

उपरोक्त समस्याओं की जड़ कहीं न कहीं रोजगार से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष संबंध रखती है। रोजगार होने पर व्यक्ति की एक दिनचर्या निश्चित होती है तथा उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति उसको मिलने वाले पारिश्रमिक से होती है एवं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह फोकस तरीके से अपने कार्यों का निर्वहन करता है।

वर्तमान समय में सरकारी, गैर सरकारी एवं स्वायत्तशासी संस्थानों के माध्यम से विभिन्न तरह की रोजगारपरक योजनाओं को संचालित किया जा रहा है।

अब हम बात करते हैं, ग्रामीण रोजगार उन्नयन के क्षेत्र में किये गये एक संक्षिप्त एवं सफल प्रयास की।

अन्तर्राष्ट्रीय कृषि विकास निधि **(IFAD)** द्वारा वित्त पोषित एवं उत्तराखण्ड सरकार, द्वारा गठित उत्तराखण्ड ग्राम्य विकास समिति **(UGVS)** द्वारा संचालित एकीकृत आजीविका सहयोग परियोजना **(ILSP)** के अंतर्गत ग्रामीण रोजगार को विस्तार देने की दिशा में कार्य किया गया है। परियोजना के अंतर्गत कुल 45 सामुदायिक संगठनों द्वारा संचालित 15

हिलांस किसान आउटलैट

- 'झांकर सैम स्वायत्त सहकारिता, गरूड़ाबांज द्वारा नरसिंहबाड़ी– अल्मोड़ा स्थित सरस बाजार में स्थानीय उत्पादों के क्रय–विक्रय हेतु हिलांस किसान आउटलैट का संचालन किया जा रहा है।
- परियोजना की जिला क्रियान्वयन एवं समन्वयन समिति की बैठक में हुए निर्णय के अनुसार यह आउटलैट वर्णित सहकारिता को हस्तगत् किया गया है।
- स्थानीय उपजों एवं अन्य आवश्यकता की वस्तुओं को सॉर्टिंग, ग्रेडिंग, पैकेजिंग कर हिलांस ब्राण्ड उपभोक्ताओं तक पहुंच बना रहा है।
- परियोजनान्तर्गत गठित जनपद की अन्य सहकारिताओं द्वारा भी अपने तैयार विभिन्न उत्पादों को इस आउटलैट के माध्यम से विक्रय किया जाता है।
- आउटलैट द्वारा प्रतिमाह लगभग रू.1.50 से 3.00 लाख तक की बिक्री की जाती है।
- आउटलैट के माध्यम से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्षत कई लोगों को रोजगार प्राप्त हो रहा है।
- आउटलैट के माध्यम से समुदाय आधारित संगठनों को अपने उत्पादों के विक्रय के लिए बेहतर अवसर प्राप्त हुआ है।
- उपभोक्ताओं को भी उचित मूल्य एवं गुणवत्तायुक्त सामग्री उपलब्ध करवायी जा रही है। सहकारिता द्वारा इस व्यवसाय को और अधिक विस्तार देने हेतु कार्य किया जा रहा है।

उद्यमों के माध्यम से लगभग 165 महिला–पुरूषों को स्थायी एवं अस्थायी रूप से रोजगार उपलब्ध कराया गया है। इसके अतिरिक्त अप्रत्यक्ष रूप से भी सैकडों स्थानीय लोगों को ग्राम स्तर पर रोजगार प्राप्त हो रहा है।

संक्षेप में ''आजीविका परियोजना'' के नाम से जानी जाने वाली इस परियोजना के तहत चयनित स्थानीय ग्रामीण समुदाय को उत्पादक समूह **(Producer Group),** तत्पश्चात् एक संकुल **(Cluster)** के समूह संगठनों को आजीविका संघ/सहकारिता **(Livelihood Collective/Cooperative)** में उत्तराखंड सहकारिता एक्ट 2003 के अंतर्गत गठित किया गया है। समूह संगठनों के सहकारिता से जुड़े होने के कारण सशक्तता एवं सततता सुनिश्चित करने में सहयोग प्राप्त हुआ है।

एग्रो प्रोसेसिंग सेन्टर, हवालबाग

- **एग्रो प्रोसेसिंग केन्द्र** की स्थापना परियोजनान्तर्गत विकास खण्ड हवालबाग में स्थित प्रसार प्रशिक्षण केन्द्र परिसर (**विकास** एवं **प्रगति स्वायत्त सहकारिता**) में की गयी है।
- जर्जर एवं अनुपयोगी भवन का जीर्णोधार कर विकास स्वायत्त सहकारिता द्वारा **फल प्रसंस्करण** कार्य के अन्तर्गत **सेब, आम, खुबानी, कीवी, माल्टा, बुरांश, नींबू, अदरक** आदि को प्रसंस्कृत कर विभिन्न प्रकार के उत्पाद जैसे **जैम, चटनी, अचार, जूस** आदि तैयार किया जा रहा है।
- प्रगति स्वायत्त सहकारिता द्वारा बेकरी इकाई के अन्तर्गत स्थानीय उपज जैसे **मडुवा** आदि को प्रसंस्कृत कर **बिस्किट, केक, मफिन, बिस्किट, केक, मफिन, पैस्ट्री, पैटीज, क्रीम रोल** आदि तैयार किया जा रहा है।
- वर्तमान में दोनों गतिविधियों से लगभग 25 लोगों (7 लोगों को स्थायी एवं 18 महिलाओं को अस्थायी) रोजगार प्राप्त हो रहा है।
- फल प्रसंस्करण एवं बेकरी इकाई द्वारा वर्तमान में प्रतिमाह औसतन रू **2.10** लाख व्यवसाय किया जा रहा है।
- इसके अतिरिक्त स्थानीय औषधीय एवं सूगंध पौध **तुलसी, गुलाब, केमोमाईल, रोजमैरी, बुरांश, गिलोय, नैटल** आदि का संग्रहण कर विभिन्न प्रकार की ***हर्बल टी*** एवं ***इम्यूनिटी बूस्टर*** तैयार कर **13 लाख रू.** धनराशि से अधिक का कारोबार किया जा चुका है।
- औषधीय गुण वाली स्थानीय उपजों के प्रति काश्तकारों का रूझान बढ़ा है, साथ ही आय अर्जन का भी सुनहरा अवसर प्राप्त हुआ है।
- उक्त उत्पादित सामग्री को स्थानीय बाजार, राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न प्रतिष्ठानों को विक्रय किया जा रहा हैं। **ट्राईफैड इण्डिया** द्वारा भी आजीविका संघों के उत्पादों को नियमित रूप से क्रय करने हेतु आपूर्ति आदेश दिये जा रहे हैं।

यह सामुदायिक संगठन ग्रामीण रोजगार को बढ़ावा देने के क्षेत्र में सफलतापूर्वक कार्य कर रहे हैं। परियोजना के माध्यम से समूह संगठनों को वित्तीय एवं तकनीकी सहयोग उपलब्ध करवाते हुए उनके क्षेत्र के अनुकूल स्थानीय उपजों (कृषि एवं उद्यान) के उत्पादन हेतु प्रेरित किया गया। इस कार्य में उन्नत तकनीकों को निवेश के तौर पर उपलब्ध करवाया गया। उन्नत तकनीकों हेतु अल्मोड़ा जनपद में स्थित विभिन्न सरकारी

धान एवं गेहूँ प्रसंस्करण इकाई एवं साप्ताहिक हाट बाजार

- चौखुटिया विकास खण्ड में आपणु बाजार परिसर में **मां अगनेरी स्वायत्त सहकारिता, वेतनधार** द्वारा **धान कुटाई एवं आटा पिसाई इकाई** की स्थापना की गयी है।
- इस इकाई के अन्तर्गत सहकारिता द्वारा चौखुटिया विकास खण्ड में उत्पादित धान एवं गेहूँ को प्रसंस्कृत कर हिलांस ब्रॉड के नाम से चावल एवं आटा स्थानीय बाजारों में विपणन किया जा रहा है।
- वर्तमान तक सहकारिता द्वारा **कुल 1800 क्विंटल धान की कुटाई एवं 25 क्विंटल गेहूँ की पिसाई** कर **लगभग रू. 26.80 लाख का व्यापार करते हुए रू. 2.50 लाख** का लाभ अर्जित किया गया है।
- उक्त गतिविधि के माध्यम से कुल 7 **(2 स्थायी एवं 5 अस्थायी रोजगार)** का सृजन किया गया है।
- चौखुटिया विकासखंड में गठित सहकारिताओं द्वारा हाट बाजार का भी आयोजन किया जा रहा है। जिसमें स्थानीय सब्जियों एवं फलों का विक्रय किया जा रहा है।

विभागों, जी.बी. पन्त, विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय, कृषि विज्ञान केन्द्र, लक्ष्मी आश्रम, कौसानी आदि का सहयोग लिया गया। इसके अतिरिक्त परियोजना द्वारा विभिन्न विषय विशेषज्ञों का भी इस कार्य हेतु सहयोग लिया गया। परियोजना क्षेत्रों में कृषि एवं बागवानी के प्रति ग्रामीणों का रूझान बढ़ा है जिससे काश्तकारों को स्थायी एवं अस्थायी रोजगार प्राप्त होने लगा है। इसके अतिरिक्त उत्पाद अधिक्य को संकुल स्तर में गठित आजीविका संघों को विक्रय किया जा रहा है। संघ द्वारा एकत्रित उत्पादों जैसे धान, मंडुवा, जौ, गेहूँ, लाल चावल, सेब, पुलम, खुबानी, कीवी, अमरूद, अदरक, आम, बुरांश, नींबू, मिर्च, कटहल, करेला, लहसुन को प्रसंस्कृत कर विभिन्न मूल्य वर्धक उत्पाद (जैम, जैली, अचार, विभिन्न तरह का मसाला, जूस, बिस्किट, केक, मफिन, ब्रेड, विभिन्न तरह का आटा, हर्बल चाय, इम्युनिटी बूस्टर) तैयार किये जा रहे हैं। इस कार्य में भी स्थानीय समुदाय को बीज बुआई से उसके मूल्यवर्धन हेतु प्रसंस्करण प्रक्रिया में विभिन्न तरह का रोजगार प्राप्त हो रहा है।

परियोजना द्वारा मार्च 2020 में आयी भयानक महामारी 'कोरोना' के कारण बाजार की मांग को देखते हुए आजीविका संघों हेतु स्थानीय उत्पादों जैसे तुलसी, रोजमैरी, लेमनग्रास, बुरांश, गिलोय, केमोमाईल, हल्दी के मिश्रण से विभिन्न तरह की हिमालयन हर्बल टी (Himalayan Herbal Tea) इम्यूनिटी बूस्टर (Immunity Booster) तैयार करने में सफलता प्राप्त की। इन उत्पादों की स्थानीय एवं बाहरी बाजार में बेहतर मांग प्राप्त होने से गतिविधि में संलग्न परिवारों/सदस्यों को रोजगार भी प्राप्त हो रहा है।

आजीविका संघों के माध्यम से आंगनबाड़ी केन्द्रों में टेक होम राशन वितरण हेतु भी स्थानीय ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादित उत्पादों जैसे मंडुवा, सोयाबीन, भट्ट एवं अन्य उत्पादों को उपलब्ध करवाने से भी ग्रामीण समुदाय को कहीं न कहीं रोजगार प्राप्त हुआ है।

ग्रामीण क्षेत्र हेतु अतिरिक्त रोजगार के अवसर पैदा करने हेतु भी परियोजना द्वारा एलडीपीई टैंक, फल पौध रोपण, हल्दी, चारा घास, उन्नत डेयरी आदि की स्थापना की गयी है।

तेल पिराई इकाई, चित्तौड़खाल, स्याल्दे

- इस इकाई का संचालन एवं प्रबन्धन नई जागृति स्वायत्त सहकारिता, कल्याणपुर (स्याल्दे) द्वारा किया जा रहा है।
- सहकारिता द्वारा स्थानीय सरसों का कृषकों/उत्पादक समूह के सदस्यों से संग्रहण कर हिलांस सरसों तेल निर्मित किया जा रहा है।
- गतिविधि से कृषकों को अपने उत्पाद के विपणन हेतु बाजार उपलब्ध हो रहा है, साथ ही सरकारिता को मूल्य संवर्धन का अवसर प्राप्त हो रहा है। सहकारिता सदस्यों द्वारा अपनी आवश्यकता हेतु भी इस इकाई का उपयोग सरसों की पिराई हेतु किया जा रहा है।
- पूर्व में स्थानीय लोगों को इस कार्य हेतु अपने गावों से 10 से 15 किमी. की दूरी तय करनी होती थी। इस गतिविधि से एक स्थानीय बेरोजगार को स्थायी एवं अन्य अस्थायी रोजगार के अवसर सृजित किये गए हैं।

टेक होम राशन

- 7 सहकारिताओं को जनपद के बाल विकास विभाग द्वारा जनपद में टेक होम राशन वितरण हेतु अधिकृत किया गया है। इन सहकारिताओं द्वारा आंगनबाड़ी केन्द्रों को ससमय एवं गुणवत्तापूर्ण टेक होम राशन की आपूर्ति की जा रही है।
- इस गतिविधि के माध्यम से स्थानीय उपज जैसे मंडुवा के उत्पादन को प्रोत्साहन मिला है। सहकारिताओं द्वारा 75 (10 स्थायी एवं 65 अस्थायी) रोजगार का सृजन किया गया है।
- विभिन्न स्तरों से होने वाले निरीक्षण एवं भ्रमण के दौरान सहकारिताओं की यह गतिविधि समस्त मानकों में खरी उतरी है।
- सहकारिताओं द्वारा इस गतिविधि से रू.60 से 70 लाख प्रतिमाह का व्यवसाय किया जा रहा है। इस गतिविधि से सहकारिताओं को लाभ की मात्रा अन्य गतिविधियों की अपेक्षा अधिक है।

परियोजना द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार की दशा एवं दिशा में बदलाव लाने की दृष्टि से स्थानीय संसाधनों में आधारित उद्यमों हेतु चयनित समूह सदस्यों का क्षमता विकास किया है। इसके अन्तर्गत फल एवं खाद्य प्रसंस्करण, पशुपालन (पैरावेट), डेयरी, कृषि एवं बागवानी, सामुदायिक विकास से संबंधित संसाधन व्यक्तियों को विकसित किया गया है। यह संसाधन व्यक्ति विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सेवाएं प्रदान करते हुए स्व रोजगार की ओर अग्रसर हैं।

मसाला प्रसंस्करण इकाई

- नई दिशा स्वायत्त सहकारिता, विनायक द्वारा भिक्यासैण विकास खण्ड परिसर में स्थित मसाला इकाई का सफलतापूर्वक संचालन करते हुए स्थानीय उत्पादकों को लाभान्वित करने के साथ ही सहकारिता की सतत्ता के लिए कार्य किया जा रहा है।
- इस इकाई के माध्यम से 1 व्यक्ति को सेवा प्रदाता के रूप में स्थायी एवं 2 महिलाओं को अस्थायी रोजगार प्रदान किया गया है।
- इकाई के माध्यम से प्रसंस्कृत हल्दी, धनिया, मिर्च एवं सब्जी मसाला को स्थानीय एवं अन्य बाजारों में विपणन हेतु उपलब्ध करवाया जाता है।

परियोजना द्वारा कतिपय क्षेत्रों में प्रतिकूल स्थानीय परिस्थितियों के कारण स्थानीय संसाधनों/उपजों पर आधारित उद्यमों/गतिविधियों की स्थापना न हो पाने के कारण उन क्षेत्रों हेतु गैर कृषि गतिविधि जैसे हैण्ड वॉश, फिनाईल पैकिंग, ई–रिक्शा संचालन, सवारी एवं माल वाहक वाहन जैसी गतिविधियों को संचालित कर रोजगार सृजन का प्रयास किया गया है। इसी तरह विभिन्न स्थानीय एवं गैर स्थानीय उपजों के मिश्रण से प्रीमियम साबुन, धूप एवं अगरबत्ती तैयार करने का कार्य भी प्रगति पर है।

इस प्रकार आजीविका परियोजना द्वारा अपने नियत परियोजना अवधि में स्थानीय लक्षित ग्रामीण समुदाय को स्थानीय एवं सत्त संचालित हो सकने वाली गतिविधि से जोड़ते हुए उनके लिए रोजगार सृजन के अवसरों को बढ़ाने/विस्तार देने का सफल प्रयास किया है।

ई–रिक्शा संचालन

- **विकास खण्ड हवालबाग** में गठित दो सहकारिताओं क्रमशः **संगम एवं विकास आजीविका स्वायत्त सहकारिताओं** के माध्यम से दो **ई रिक्शा** का संचालन किया जा रहा है।
- जनपद में पहली बार हो रहे ई – रिक्शा के संचालन के लिए परियोजना की दो सहकारिताओं का लॉटरी के माध्यम से चयन किया गया है।
- दोनों सहकारिताओं की इस गतिविधि से सहकारिताओं को आर्थिक लाभ होने के साथ ही शहर वासियों एवं शहर में आने वाले पर्यटकों एवं अन्य यात्रियों को इस सेवा का लाभ प्राप्त हो रहा है।
- ई–रिक्शा परियोजना गतिविधियों के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। गतिविधि के माध्यम से **2 स्थानीय समुदाय को प्रत्यक्ष रूप से रोजगार** प्राप्त हो रहा है।
- सहकारिता द्वारा **रू.12000.00** से **रू.15000.00** की मासिक आय प्राप्त हो रही है।

ग्रामीण उद्यम, मंगलता, जमराड़ी

- **विकास खण्ड भैसियाछाना** में आस पास के ग्रामों से एकत्रित स्थानीय उत्पादों को क्रय एवं प्रसंस्कृत किया जाता है।
- आंगनबाड़ी केन्द्रों को ससमय एवं गुणवत्तायुक्त **टेक होम राशन** वितरण किया जा रहा है।
- उद्यम के माध्यम से **लगभग 8 स्थायी एवं 26 अस्थायी** रोजगार अवसरों का सृजन किया गया है।
- टेक होम राशन गतिविधि की सफलता के फलस्वरूप संबंधित विभाग द्वारा अत्यधिक कुपोषित बच्चों हेतु अल्मोड़ा जनपद में **Ready-to-Use Therapeutic Food (RUTF)** वितरण हेतु भी अधिकृत किया गया।
- संचालन के चलते सहकारिता को चम्पावत एवं पिथौरागढ जनपद के बाल विकास विभाग द्वारा भी अपने जनपदों में **RUTF** आपूर्ति हेतु अधिकृत किया गया है।
- उपरोक्त गतिविधियों से सहकारिता को मासिक रूप से लगभग **रू.6.60** लाख का व्यवसाय करते हुए लगभग **रू.60**हजार प्रतिमाह का लाभ अर्जित किया जा रहा हैं।

विविधता पूर्ण व्यवसायिक गतिविधियों के साथ उज्जवल स्वायत्त सहकारिता

- उज्जवल स्वायत्त सहकारिता, हवालबाग द्वारा विभिन्न प्रकार की सामाजिक एवं व्यावसायिक गतिविधियों का सम्पादन किया जा रहा है।
- सहकारिता द्वारा मुख्यतः **स्थानीय उत्पाद, दुग्ध व्यवसाय, टेक होम राशन, प्रीमियम गिफ्ट पैक, लिप बाम, साबुन, हैण्ड वॉश, फ्लोर क्लीनर पैकिंग, भार एवं टैक्सी वाहन, मोबाईल एग्रो क्लीनिक** का संचालन किया जा रहा है।
- सहकारिता द्वारा प्रतिमाह लगभग **10 लाख रू.** का व्यवसाय करते हुए **लगभग 75 स्थानीय युवक–युवतियों को स्थायी एवं अस्थायी रोजगार** उपलब्ध करवाया है।
- सहकारिता सरकारी विभागों के साथ उचित सामन्जस्य के साथ कार्य करते हुए विभिन्न प्रकार की गतिविधियों का सम्पादन किया जा रहा है। सहकारिता द्वारा उत्पादित उत्पादों को स्थानीय एवं बाहय बाजार में स्थान प्राप्त हो रहा है।
- उज्ज्वल स्वायत्त सहकारिता द्वारा अल्मोड़ा शहर में उत्पाद की मांग को देखते हुए चौघान पाटा नामक स्थान में एक **'हिलांस किसान आउटलैट'** भी स्थापित किया गया है। इस आउटलैट के माध्यम से प्रतिमाह लगभग **रू. 0.80 से रू. 1.00 लाख** तक का व्यवसाय किया जा रहा है। इसके माध्यम से दो स्थानीय बेरोजगारों को स्थायी रोजगार उपलब्ध करवाया गया है।

स्थानीय उत्पादों का क्रय–विक्रय

- परियोजना के साथ कार्यरत सहकारिताओं के माध्यम से ग्राम समुदाय के उत्पाद अधिक्य वाली फसलों/फलों जैसे मंडुवा, गहत, भट्ट, सोयाबीन, चौलाई, आलू, गडेरी, माल्टा, कीवी, लहसुन, अदरक, हल्दी, मिर्च आदि को ग्राम स्तर पर क्रय किया जाता है।
- इससे ग्रामीण काश्तकारों को अपने उत्पाद विपणन हेतु एक उचित मंच प्राप्त हो रहा है, साथ ही उचित मूल्य भी प्राप्त हो रहा है।
- उत्पादों के संग्रहण, ग्रेडिंग, पैकिंग एवं विपणन के दौरान स्थानीय युवक–युवतियों को रोजगार के अवसर भी प्राप्त हो रहे हैं।
- परियोजना द्वारा इस कार्य में सहयोग देने हेतु संग्रहण एवं मिनी संग्रहण केन्द्रों का निर्माण किया गया है जिससे कि उत्पादों का संग्रहण, ग्रेडिंग एवं पैकिंग आसान हो सके।
- उत्पादों के विक्रय के लिए आजीविका संघों अन्तर्गत विभिन्न स्थानों जैसे हिलांस किसान आउटलेट, नरसिंहबाड़ी, हिलांस किसान आउटलैट, चौघानपाटा, अल्मोड़ा, हिमदृश्य स्वायत्त सहकारिता, मजखाली, प्रगति स्वायत्त सहकारिता, मोतियापाथर, आदि स्थानों में आउटलैट की स्थापना की गयी है।

पारंपरिक फसलों के बीजोत्पादन से आय सृजन एवं सामुदायिक बीज बैंकों द्वारा संरक्षण

राजेश खुल्बे, देवेन्द्र शर्मा एवं लक्ष्मी कान्त

भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान

अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

विश्व की प्रमुख खाद्य फसलों, जिनमें मुख्यतः गेहूँ, धान, मक्का, चना, मसूर, सोयाबीन, सरसों व सूरजमुखी सम्मिलित हैं, के अतिरिक्त देश–प्रदेशों के अनेक हिस्सों में छोटे स्तरों पर विविध प्रकार की कई फसलें भी उगायी जाती हैं जो उन क्षेत्रों की आबादी की खाद्य व पोषण सुरक्षा संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। प्रायः यह फसलें वर्षाश्रित दशाओं व अन्य विषम परिस्थितियों के लिये अनुकूलित होती हैं तथा प्रमुख खाद्य फसलों की अपेक्षा इनमें जलवायु–तन्यकता अधिक पायी जाती है। इन विशेषताओं के कारण यह फसलें इन क्षेत्रों में प्रचलित फसल प्रणालियों का अभिन्न घटक होती हैं। सामान्यतः इनकी उपज क्षमता प्रमुख खाद्य फसलों की तुलना में कम होती है परन्तु इनमें पोषक तत्व प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं जिस कारण वर्तमान में इनका वैश्विक महत्व भी बढ़ रहा है तथा आय अर्जन की अपार संभावनायें उत्पन्न हो रही हैं।

भारत के अन्य पर्वतीय, शुष्क, सीमांत व जनजातीय क्षेत्रों की भाँति उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में भी कई प्रकार की पारंपरिक खाद्य फसलों की खेती की जाती है जिनमें लाल धान, मंडुवा, मादिरा, गहत, भट, राजमा, उगल इत्यादि सम्मिलित हैं। इन फसलों के घरेलू उपयोग के साथ–साथ इनके विशेष गुणों के कारण उपभोक्ताओं के मध्य भी इनकी काफी माँग रहती है जो इन्हें पर्वतीय कृषकों की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत बनाती हैं। इन फसलों की उपज में वृद्धि से कृषकों को इन फसलों से अधिक लाभ प्राप्त करने में सहायक होगी। यद्यपि वर्तमाान में लगभग सभी पारंपरिक फसलों की उन्नत प्रजातियाँ उपलब्ध हैं, स्थानीय कृषकों द्वारा इन फसलों की पारंपरिक प्रजातियाँ की खेती अभी भी काफी बड़े हिस्से में की जाती है जिसका एक प्रमुख कारण है उन्नत प्रजातियों के बीज की समय से व पर्याप्त मात्रा में उपलब्धता नहीं हो पाना।

फसलों की उत्पादकता व उत्पादन में निरंतर वृद्धि हेतु कृषकों को उन्नत बीज की नियमित उपलब्धता आवश्यक है क्योंकि उन्नत बीज कृषि की उत्पादकता बढ़ाने में 15–20 प्रतिशत तक योगदान करते हैं। हमारे देश में बीज उत्पादन की औपचारिक व अनौपचारिक दोनों ही प्रणालियाँ विद्यमान हैं। यह प्रणालियाँ एक दूसरे के पूरक का कार्य करती हैं तथा इनके परस्पर सहयोग से कृषकों को उन्नत प्रजातियों के गुणवत्तायुक्त बीज की आपूर्ति सुनिश्चित होती है।

औपचारिक बीज उत्पादन प्रणालीः इसमें सरकारी शोध संस्थान, सरकारी व निजी बीज उत्पादन व विपणन संस्थायें तथा बीज प्रमाणीकरण व गुणवत्ता नियंत्रण के लिये जिम्मेदार संस्थायें सम्मिलित हैं। इस प्रणाली में केवल केन्द्रीय उप–समिति द्वारा अधिसूचित फसल प्रजातियों का बीज उत्पादित किया जाता है।

अनौपचारिक बीज उत्पादन प्रणालीः यह कृषक, ग्राम अथवा स्थानीय स्तर की प्रणाली है जिसमें कृषक स्वयं बीज का उत्पादन व प्रसारण करते हैं तथा कृषि हेतु स्वयं द्वारा उत्पादित बीज का प्रयोग करते हैं या अपने पड़ोसियों, मित्रों अथवा परिजनों से अदला बदली कर या स्थानीय अनाज मंडियों से बीज प्राप्त करते है। इस प्रणाली में उत्पादित किया जाने वाला बीज प्रायः स्थानीय प्रजातियों या प्रजातीय मिश्रणों का होता है।

परंपरागत फसलों की अधिसूचित प्रजातियों का बीजोत्पादन औपचारिक व अनौपचारिक दोनों ही प्रणालियों से किया जा सकता है परन्तु स्थानीय किस्मों का बीजोत्पादन वर्तमान में औपचारिक प्रणाली से नहीं किया जा सकता है। अतः इनके बीजोत्पादन हेतु मुख्यतः अनौपचारिक बीज उत्पादन प्रणाली पर निर्भरता रहती है यद्यपि इनकी बढ़ती व्यवसायिक संभावनाओं के दृष्टिगत कई सरकारी/गैर–सरकारी संस्थायें, कृशक सहकारिता समितियाँ व कृषक उत्पादक समूह द्वारा भी पारंपरिक फसलों की लोकप्रिय स्थानीय किस्मों का बीजोत्पादन बड़े स्तर पर किया जा रहा है।

पारंपरिक फसलों की स्थानीय किस्मों का बीजोत्पादन

पद्धतिबद्ध प्रकार से बीज उत्पादित करने की प्रक्रिया को बीजोत्पादन कहा जाता है तथा यह विभिन्न क्रियाकलापों की एक श्रृंखला है जिसमें कृषि की सामान्य क्रियाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य क्रियायें सम्मिलित हैं जिनका पालन कर उत्पादित बीजों की अनुवांशिक व भौतिक गुणवत्ता सुनिष्चित की जाती है। गुणवत्तायुक्त बीज के उपयोग से फसल उत्पादकता व गुणवत्ता में वृद्धि होती है जिससे बाजार में उसका अच्छा मूल्य प्राप्त होता है। संस्तुत बीजोत्पादन क्रियाओं का पालन कर कृषक स्वयं व अपने साथी कृषकों के लिये स्थानीय किस्मों के गुणवत्तायुक्त बीज की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित कर सकते हैं तथा बीज व फसल उत्पाद के विपणन से अधिक लाभ अर्जित कर सकते हैं।

पारंपरिक फसलों की स्थानीय किस्मों के गुणवत्तायुक्त बीजोत्पादन हेतु निम्नलिखित पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक होता है।

उपयुक्त किस्म का चयनः बीजोत्पादन हेतु उन स्थानीय किस्मों का चयन करना लाभदायक होता है जो उपभोक्ताओं में मध्य लोकप्रिय होने के कारण अधिक क्षेत्रफल में उगायी जाती हो जिस कारण कृशकों के मध्य उनके बीज की माँग अधिक रहती हो।

बीज स्रोतः स्थानीय किस्मों के बीजोत्पादन हेतु कृशक स्वयं द्वारा उत्पादित गुणवत्तायुक्त बीज का उपयोग कर सकते हैं। स्वयं के पास बीज की अनुपलब्धता की स्थिति में अन्य कृशकों से, जो विष्वसनीयता के साथ इन किस्मों का गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादित करते हों, से बीज प्राप्त किया जा सकता है। वर्तमान में कई क्षेत्रों में सामुदायिक बीज बैंक भी उपलब्ध हैं जो स्थानीय किस्मों के बीजों का अनुरक्षण करते हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय किस्मों का बीज उन सरकारी/गैर–सरकारी संस्थायें, कृषक सहकारिता समितियाँ व कृषक उत्पादक समूह, जो स्थानीय किस्मों का बीजोत्पादन करते हैं, से भी प्राप्त किया जा सकता है।

यदि कृषक किसी संस्था के साथ सहभागिता में स्थानीय किस्मों का बीज उत्पादित कर रहे हों तो उपयुक्त किस्मों का विश्वसनीय बीज उन संस्थाओं द्वारा ही उपलब्ध कराया जाता है।

संस्तुत कृषिगत क्रियाओं का पालनः स्थानीय किस्मों की फसल से अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिये संस्तुत कृशिगत क्रियाओं का पालन करना आवष्यक है जिनमें संस्तुत समय पर, संस्तुत विधि व बीज दर से बुआई तथा फसल में पोशण एंव रोग–कीट प्रबंधन प्रमुख हैं। संस्तुत क्रियाओं का पालन करने से उत्पादकता के साथ–साथ फसल उत्पाद की गुणवत्ता भी बढ़ती है।

यदि जैविक बीज उत्पादित किया जा रहा हो तो जैविक खेती हेतु संस्तुत पदार्थों का उपयोग ही करना चाहिये।

पृथक्करण दूरीः बीजोत्पादन प्रक्षेत्र में विभिन्न किस्मों के बीच संस्तुत पृथक्करण दूरी रखना आवश्यक है ताकि उत्पादित बीज को उसी फसल की अन्य किस्मों द्वारा अनुवांषिक तथा/अथवा भौतिक रूप से संदूशित होने से बचाया जा सके।यह दूरी सभी फसलों क लिए अलग–अलग संस्तुत की गयी है।

अवांछनीय पौधों का निकालना (रोगिंग): रोगिंग का मुख्य उद्देष्य उत्पादित बीज की अनुवांषिक तथा भौतिक रूप से उच्च षुद्धता बनाये रखना है। इस कार्य में अन्य किस्मों तथा अन्य फसलों के पौधों, आपत्तिजनक खरपतवार एवं फसल में उपस्थित रोग–व्याधियों से ग्रसित पोधों को बीजोत्पादन फसल से निकाल कर दूर किया जाता है। यह कार्य प्रायः वानस्पितिक अवस्था से लेकर फसल की कटाई तक निरंतर किया जाता है। फसल में कटाई के उपरांत भी अलग प्रकार के बीजों की छटनी की जाती है ताकि उत्पादित बीज में अधिकतम अनुवांशिक शुद्धता रहे।

यदि कृषक किसी अनुबंध अथवा सहभागी व्यवस्था के अंतर्गत बीज उत्पादन करते हैं तो उत्पादित बीज की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिये समय–समय पर उन संस्थाओं के प्रतिनिधियों द्वारा बीजोत्पादन फसल का निरीक्षण किया जाता है। निरीक्षण के दौरान पृथक्करण, अवांछनीय पौधों की उपस्थिति, आपत्तिजनक खरपतवार एवं फसल में उपस्थित रोग–व्याधियों का निरीक्षण किया जाता है तथा मानकों के अनुरूप होने पर ही फसल को बीज के रूप में उपयोग हेतु योग्य माना जाता है।

फसल कटाई व मड़ाई : प्रायः जब पौधे सूखने लगे तब फसल की कटाई करनी चाहिये। कटाई के समय भिन्न प्रकार तथा/अथवा रोग–कीट ग्रस्त बालियों/फलियों अलग कर देना चाहिए। बालियों/फलियों को अच्छी प्रकार सुखाने के बाद एक बार फिर छंटाई करनी चाहिए। दाना निकालने का कार्य हाथ से अथवा विद्युतचालित यन्त्र द्वारा किया जा सकता है। मड़ाई की प्रक्रिया में सावधानी रखनी चाहिए कि बीज को किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे तथा मड़ाई यन्त्र में पूर्व से ही किसी अन्य प्रजाति के बीज बचे हुए न हों।

बीज संसाधन (सीड प्रोसैसिंग): इस प्रक्रिया से बीज में उपस्थित निष्क्रिय पदार्थ (भूसा, कंकर आदि) हल्के छोटे व कटे–फटे बीज व खरपतवारों को हटाया जाता है। बीज की मात्रा कम होने पर यह कार्य हाथ से भी किया जा सकता है। बीज की मात्रा अधिक हाने पर यह कार्य बीज संसाधन संयंत्रों में करवाया जाना सुविधाजनक होता है।

संस्थागत बीजोत्पादन के अंतर्गत संबंधित संस्थाओं द्वारा बीज संसाधन का कार्य बीज संसाधन संयंत्रों में करवाया जाता है। संसाधित बीज का एक नमूना किसी मान्यता–प्राप्त बीज परीक्षण प्रयोगषाला को विवरण सहित (फसल/किस्म का नाम, लॉट संख्या, बीजोत्पादक का नाम, दिनांक सील बंद पैकैट मे) भेजा जाता है ताकि बीज परीक्षण के परिणामों के आधार उत्पादित बीज निर्धारित मानकों के अनुरूप होने अथवा न हाने के जानकारी प्राप्त हो सके।

टैगिंग, भण्डारण एवं विपणनः निर्धारित मानकों के अनुरूप पाये गये बीज को उचित आर्द्रता के स्तर तक सुखाये जाने के पष्चात हवादार जूट के थैलों में भरकर भण्डारण किया जाता है। सभी थैलों पर पहचान हेतु टैग लगाये जाते हैं जिनपर फसल/किस्म का नाम, लॉट संख्या, बीजोत्पादन वर्श, बीजोत्पादक का नाम, इत्यादि जानकारियों का उल्लेख होता है। बीज का विपणन उत्पादक कृशकों द्वारा सीधे अपने स्तर पर अथवा विभिन्न विपणन संस्थाओं में माध्यम से किया जाता है।

स्थानीय किस्मों का सामुदायिक बीज बैंकों में संरक्षण

विश्व की निरंतर बढ़ती आबादी के भरण–पोषण हेतु अनुरूप दर से कृषि उत्पादन में वृद्धि आवश्यक है। हरित क्रांति द्वारा इस लक्ष्य को प्राप्त करने में तो सफलता प्राप्त हुयी परन्तु सभी प्रयास गेहूँ व धान जैसी प्रमुख फसलों की उत्पादन वृद्धि पर केन्द्रित होने के कारण इस प्रक्रिया का फसलीय जैव विविधता पर, मुख्यतः पारंपरिक फसलों में, भारी विपरीत प्रभाव पड़ा। फसलों का अनुवांषिक आधार सिकुड़ पर सीमित हुआ, पारंपरिक फसलों के क्षेत्रफल में भारी कमी आयी तथा इन फसलों की कई स्थानीय किस्में विलुप्त हो गयीं या विलुप्ति के कगार पर पहुँच गयीं।

यद्यपि फसलों की पारंपरिक किस्मों विलुप्ति से बचाने के लिये राष्ट्रव्यापी अभियानों के द्वारा उनका संकलन व संग्रहण जीन बैंकों द्वारा किया गया परन्तु जीन बैंकों का प्रमुख कार्य संग्रहण व अनुरक्षण होने के कारण उनके द्वारा किसानों को खेती हेतु इन किस्मों का बीज उपलब्ध कराना संभव नहीं हो पाता है। साथ ही केन्द्र से अधिसूचित न होने के कारण पारंपरिक किस्में औपचारिक बीजोत्पादन प्रक्रिया व वितरण प्रणाली का हिस्सा नहीं बन पाती हैं, जिस कारण कृषकों के पास स्वयं ही उनका बीज उत्पादन व संरक्षित करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं रहता है। यद्यपि यह परंपरा लम्बे समय से चली आ रही है तथा इस माध्यम से कृषक पारंपरिक फसलों की स्थानीय प्रजातियों का संरक्षण करते आ रहे हैं परन्तु अप्रत्याशित/आकस्मिक प्राकृतिक आपदाओं–जैसे भारी बाढ़, निरंतर सूखे की स्थिति व रोग अथवा कीट–के कारण फसलों को भारी नुकसान की स्थिति में कृषकों के निजि बीजकोष भी रिक्त हो जाते हैं तथा प्रायः उन बीजों को पुनः प्राप्त करने का कोई वैकल्पिक स्रोत भी नहीं रह जाता है। इस प्रकार स्थानीय प्रजातियाँ कालांतर में लुप्त हो जाती हैं। यदि इन प्रजातियों के बीज का कोई स्रोत बचता भी है तब भी उस बीज को सभी कृषकों तक खेती करने योग्य मात्रा में पहुँचने के कई वर्षों का समय लग सकता है।

इस समस्या के समाधान हेतु सामुदायिक बीज बैंक एक कारगर विकल्प के रूप में उभर कर आये हैं। आमतौर इन्हें ग्राम अथवा ग्राम समूह स्तर पर स्थापित किया जाता है। इनका उद्देष्य कृषकों के मध्य स्वयं का बीज उत्पादित व उपयोग करने की प्रथा को पुनः प्रचलन में लाना तथा गुणवत्तायुक्त बीज तक उनकी पहुँच को सुगम बनाना है। प्रायः इनका परिचालन कृषकों द्वारा चुने प्रतिनिधियों अथवा स्वयंसेवी कृषकों द्वारा किया जाता है। सामुदायिक बीज बैंक न केवल बीज संरक्षित करते हैं बल्कि उनसे जुड़े पारंपरिक ज्ञान व कृषि पद्यतियों को भी संरक्षित करते हैं। वर्तमान में सामुदायिक बीज बैंक का उपयोग पारंपरिक फसलों के बीज संरक्षण तक ही सीमित नहीं है अपितु इनका उपयोग प्रचलित उन्नत प्रजातियों के बीज हेतु भी किया जाता है ताकि किन्हीं परिस्थितियों में उनका बीज आम स्रोतों से उपलब्ध न होने की दशा में भी कृषकों को बीज की उपलब्धता सुनिश्चित हो सके।

पर्वतीय क्षेत्र अनेक पारंपरिक फसलों की प्रजातीय विविधता में धनी होने तथा प्राकृतिक आपदाओं के लिये अत्यधिक संवेदनशील होने के कारण, यहाँ सामुदायिक बीज बैंक का महत्व व आवष्यकता और भी अधिक बढ़ जाते हैं। सामुदायिक बीज बैंक की स्थापना से, विशेषतौर पर सीमांत क्षेत्रों में, उपभोक्ताओं के मध्य लोकप्रिय स्थानीय प्रजातियों की खेती हेतु विश्वसनीय व गुणवत्तायुक्त बीज निरंतर व पर्याप्त मात्रा में कृषकों को उपलब्ध हो सकेगा। साथ ही अमूल्य पारंपरिक फसल अनुवांशिक संसाधनों का यथास्थान संरक्षण (*in situ* conservation) सुनिश्चित होगा तथा सामुदायिक बीज बैंक (*ex situ*) बीज संरक्षण सुविधाओं की भूमिका भी निभायेंगे।

पारम्परिक फसलों में कीट प्रबन्धन

जे.पी. गुप्ता, अमित पश्चापुर एवं सनाउल्लाह भट्ट

भाकृअनुप–विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

खरीफ मौसम में उगाई जाने वाली पारम्परिक फसलों में धान, मक्का, मंडुआ एवं मादिरा, तिलहनी एवं दलहनी फसलों में सोयाबीन, अरहर, फ्रासबीन एवं राजमा व सब्जियों में कददू वर्गीय फसलें मुख्य स्थान रखती हैं। कीटों द्वारा इन फसलों को औसतन लगभग 15–25 प्रतिशत तक हानि पहुँचाई जाती है। अतः फसल की अधिकतम पैदावार लेने के लिए उचित समय पर टिकाऊ प्रबन्धन आवश्यक हो जाता है जिससे कम लागत में अधिक पैदावार मिले तथा पर्यावरण पर रासायनिक कीटनाशियों का कम से कम प्रभाव पड़े। इन पारंपरिक फसलों में कई प्रकार के कीटों के द्वारा क्षति पहुँचाई जाती है जिनका वर्णन नीचे दिया गया है।

1. कुरमुला या सफेद गिडार

क्षति के लक्षणः यह कीट उपराऊं धान को हानि पहुँचाता है। इस कीट के सफेद रंग के गिडार जमीन के अन्दर रहते हुए ही पौधों की जड़ों को खाते रहते हैं। परिणाम स्वरूप पौधा पीला पड़कर सूखने लगता है और खींचने पर आसानी से बाहर आ जाता है।

पहचानः यह कीट पर्वतीय क्षेत्रों में धान के अलावा उपराऊं में बोयी जाने वाली सभी फसलों को हानि पहुँचाता है। इनके वयस्क भृंग भूरे, हरे, सफेद–भूरे आदि रंग के होते हैं। इनके वयस्क जून से अक्टूबर महीने तक प्रकाश में आते हैं। ये अपने अण्डे जमीन में देते हैं। अण्डों से निकलकर इनके गिडार कार्बनिक पदार्थो को खाते हैं। इन गिडारों की द्वितीय एवं आगे की अवस्थाएं फसलों की जड़ों को ढूंढकर काटती व खाती हैं। ज्यादा ठंड पड़ने पर जाड़ों में ये जमीन में काफी नीचे लगभग 30 से 100 से.मी. तक चले जाते हैं। पुनः मार्च–अप्रैल के महीने में मौसम अनुकूल होने पर ऊपर की ओर आते हैं। इस बीच इनकी प्यूपा अवस्था जमीन में ही बनती है। यह जून–जुलाई में वयस्क बनकर बाहर निकलते हैं एवं वृक्षों तथा फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं।

प्रबंधनः कुरमुले की समस्या के निदान हेतु वयस्क कीट तथा सफेद गिडार दोनों की ही रोकथाम आवश्यक है। प्रकाश प्रपंच (वी.एल. कुरमुला ट्रैप–1) के प्रयोग से वयस्कों को आकर्षित कर नष्ट किया जा सकता है। कच्चे गोबर की खाद का प्रयोग नहीं करना चाहिये। संस्थान द्वारा विकसित एक जैव कीटनाशी जीवाणु *बैसिलस सिरियस* स्ट्रेन डबलू.जी.पी.एस.बी.–2 कुरमुलों को आसानी से नियंत्रित कर लेता है। इसके पाउडर को गोबर की खाद में मिलाकर (10 ग्राम प्रति कि.ग्रा.) खेतों में डाल देने से कुरमुले नियंत्रित हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त दुधिया रोग ग्रसित कुरमुलों को एकत्रित कर गोबर की खाद वाले गढ्ढे में

मिला देना चाहिये। कुरमुला रोधी जीवाणुओं द्वारा उपचारित गोबर की खाद का ही प्रयोग करना चाहिये। जिन पेड़ों पर वयस्कों के झुण्ड दिखलाई देते हैं उन पर कीटनाशी दवाओं जैसे क्लोरपायरिफॉस 20 ई.सी. की 2 मि.ली. प्रति ली. पानी की दर से छिड़काव करना चाहिए। इसके गिडारों के नियंत्रण हेतु प्रथम गुड़ाई के समय क्लोरपाइरिफॉस 10जी. की 400 ग्राम अथवा क्लोरपायरिफॉस 20 ई.सी. की 80 मि.ली. दवा लगभग एक किलो भुरभुरी मिट्टी में मिला कर प्रति नाली की दर से जून–जुलाई में अच्छी तरह मिट्टी में मिला देनी चाहिए।

2. गुलाबी तना बेधक

क्षति के लक्षणः पर्वतीय क्षेत्रों में मुख्य रूप से गुलाबी रंग का तना बेधक कीट ही धान की फसल को नुकसान पहुँचाता है। इस कीट की सूड़ियाँ पौधों के तने के अन्दर घुसकर तने को खा जाती हैं जिसके कारण तने का मध्य भाग सूख जाता है। यह डेड हार्ट लक्षण इस कीट के प्रकोप की विशिष्ट पहचान है। इन प्रकोपित तनों के अंदर एक से अधिक सूड़ियाँ भी देखी जा सकती हैं। यदि यह कीट फसल को बाद की अवस्था में प्रभावित करता है तो बालियाँ सफेद हो जाती हैं एवं दानों की जगह भूसी (चैफ) बनती है। यह सफेद बाली (व्हाइट इयर) लक्षण कहलाता है।

पहचानः इस कीट की सूड़ियाँ गुलाबी–भूरे रंग की होती हैं जो पौधों के तने के अन्दर सुरंग में दिखती हैं। इस कीट के वयस्क पतंगे भूसे के रंग के एवं पिछले पंख सफेद होते हैं।

प्रबंधनः कीटरोधी किस्मों को बोयें। प्रभावित बालियों को निकालकर नश्ट करें। अधिक प्रकोप की सम्भावना होने पर क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. की 2.0 मि.ली. या क्लोरैन्ट्रानिलीप्रोल 18.5 एस.सी. दवा की 0.3 मि.ली. दवा प्रति ली. पानी की दर से छिड़काव करें।

3. पत्ती लपेटक

क्षति के लक्षणः पत्ती लपेटक कीट पत्तियों को लंबाई में मोड़ देते हैं या लपेट देते हैं एवं पर्णहरित (क्लोरोफिल) को खुरचकर खाते हैं जिससे पत्तियाँ सफेद हो जाती हैं व सूख जाती हैं।

पहचानः इस कीट के वयस्क पतंगे भूरे रंग के जिन पर कई गहरी लहरदार धारियाँ व पंखों के किनारों पर गहरी पट्टियाँ होती हैं। मुड़ी हुई पत्ती में हल्के हरे रंग की सक्रिय सूंडी होती है।

प्रबंधनः प्रकाश प्रपंच लगाकर वयस्कों को आकर्षित कर नष्ट किया जा सकता है। *ट्राइकोग्रामा किलोनिस* के 50,000 कीटों को प्रति हैक्टेयर की दर से अंडे देने के समय (अधिकतम पतंगे निकलते वक्त) छोड़ें। क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. की 2.0 मि.ली. दवा प्रति ली. पानी में घोलकर छिड़काव करें।

4. भूरा फुदका

क्षति के लक्षणः इस कीट के शिशु एवं वयस्क दोनों ही पानी की सतह से ऊपर पौधों के निचले भाग में इकट्ठे होकर रस चूसकर पौधों को सुखा देते हैं जिससे फसल जली हुई दिखाई देती है। यह ''हॉपर बर्न'' इस कीट के प्रकोप का विशिष्ट लक्षण है जो फसल में गोलाकार पट्टी में दिखाई देता है एवं समय के साथ बढ़ता जाता है।

पहचानः ये छोटे धूसर रंग के कीट होते हैं तथा पंख पर गहरे रंग की नाड़ियाँ दिखाई पड़ती हैं। सफेद फुदका के शिशु सफेद रंग के एवं भूरा फुदका के शिशु प्रथम अवस्था में सफेद रंग एवं बाद की अवस्थाओं में भूरे रंग के होते हैं।

प्रबंधनः धान के पौधों की पास–पास रोपाई एवं ज्यादा मात्रा में नत्रजन उर्वरक डालने से बचें। प्रकाश प्रपंच का उपयोग निगरानी व नियंत्रण के लिए सकते हैं। परभक्षी जीवों जैसें मिरीड बग एवं लाइकोसा मकड़ी को बढ़ावा देना चाहिए। थायमिथॉक्साम 25 डब्ल्यू.जी. की 0.3 ग्रा. या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 0.3 मि.ली. प्रति ली. पानी की दर से छिड़काव करें।

5. टिड्डे

क्षति के लक्षणः इनके शिशु एवं वयस्क दोनो ही पत्तियों को खाकर भारी क्षति पहुँचाते हैं।

पहचानः यह हरे अथवा भूरे रंग का सर्वहारी कीट है। ये अपने अण्डे ज्यादातर भूमि में अथवा मेड़ों पर देते हैं। इसकी मादा अंडे देते समय एक विशेष प्रकार के द्रव का स्राव करती है जिससे कैप्सूल रूपी संरचना बनती है।

प्रबंधनः गर्मी में गहरी जुताई करने से इनके अण्डे सूर्य के प्रकाश से नष्ट हो जाते हैं। मेड़ों की छँटाई करने से इनके अंडे ऊपर दिखने लगते हैं जिन्हें पक्षी व परभक्षी खा लेते हैं। इनकी संख्या को जाली की सहायता से पकड़कर काफी हद तक कम किया जा सकता है। ज्यादा प्रकोप होने पर डेल्टामेथ्रिन 2.8 ई.सी. की 1.0 मिली. मात्रा प्रति ली. पानी की दर से घोलकर छिड़काव करना चाहिए।

मक्का के प्रमुख कीट

1. प्ररोह मक्खी

क्षति के लक्षणः यह कीट पौधे की प्रारंभिक अवस्था में ''मध्य प्ररोह'' में घुसकर उसके भीतरी भाग को खाते हैं। यह लक्षण डेड हार्ट कहलाता है।

पहचानः यह एक अत्यंत छोटे आकार की मक्खी होती है। जिसके शिशु या लार्वा (मैगट) फसल को हानि पहुंचाते हैं।

प्रबंधनः इस कीट का आक्रमण वसन्त ऋतु की मक्का में बहुत अधिक पाया जाता है। पौधे उगने के पश्चात यदि 20 से 25 दिन तक फसल को बचा लिया जाए तो इसके बाद इस कीट का आक्रमण नहीं होता है। इमिडाक्लोप्रिड 75 डब्ल्यू.एस. की 1.0 ग्रा./कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करके बोने से इस कीट के आक्रमण एवं कुरमुलों से फसल को बचाया जा सकता है। प्राफेनोफास कीटनाशी का 2.0 मि.ली. प्रति ली. की दर से पानी में मिलाकर लक्षण दिखने पर छिड़काव करना चाहिए।

2. कटुआ कीट

क्षति के लक्षणः इस कीट का प्रकोप फसल की प्रारम्भिक अवस्था में होता है। इन कीटों के वयस्क पत्तियों की निचली सतह अथवा जमीन में अण्डे देते हैं। अंडे से सूंडियां तथा रात्रि में कोमल तनों को खाते हैं।

पहचानः इस कीट का वयस्क गाढ़े भूरे रंग की तितली होती है। अगले पंख पर गाढ़े लहरदार धब्बे होते हैं परन्तु पिछला पंख हल्के रंग का होता है। इस कीट की सूंडी अवस्था फसलों को काटकर को क्षति पहुँचाती है।

प्रबंधनः छोटे खेतों में इनकी सूंडियों को हाथ से चुनकर नष्ट किया जा सकता है। खेतों में पानी भरकर भी इन्हें नियंत्रित किया जा सकता है। कीट के वयस्कों को प्रकाश प्रपंच द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। बतैन गिरि के पाउडर का 250 ग्राम प्रति नाली के हिसाब से पौधों पर बुरकाव करना प्रभावी पाया गया है। जैव रोगकारक कवक *मेटारिजियम एनिसोपिली* या *ब्यूवेरिया वेसियाना* या *नोमेरिया रिलेई* की 200 ग्राम प्रति नाली की दर से सड़ी हुई गोबर की खाद अथवा वर्मीकम्पोस्ट में मिलाकर खेतों में डालें। थायोमिथोक्जाम 19.8 डब्लू.जी. + सेन्ट्रानिलिप्रोल 19.8 या थायोमिथोक्जाम 70 डब्लू. एस. की 4 मिली/किग्रा. बीज की दर से बीजोपचार करना प्रभावी पाया गया है। खेत की तैयारी के समय क्लोरपायरीफॉस 10जी. की 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से मिट्टी में मिला दें। बाद में प्रकोप होने पर क्लोरपाइरीफॉस 20 ई.सी. की 2. मि.ली. मात्रा प्रति ली. पानी की दर से पौधे को चारों तरफ से तर कर दें।

3. मक्के का फाल आर्मीवर्म

क्षति के लक्षणः इस कीट की सूंडी मक्का की फसल को क्षति पहुँचाती है। पत्तियों पर सभी प्रकार के लम्बे कागजी झरोखों का पाया जाना आर्मीवर्म का प्रारंभिक लक्षण है। इस प्रकार के लक्षण प्रथम और द्वितीय अवस्था के सूंडी द्वारा पत्तियों की सतह को खुरचकर खाये जाने से उत्पन्न होता है। बड़ी सूंडी पत्तियों को गम्भीर रूप से खा जाती हैं। इनके खाने से पत्तियों पर विषम खांचेदार एवं गोल छिद्र एक पंक्ति के रूप में दिखाई देते हैं। सूंडी पर्णचक्र पर बड़ी मात्रा में हरे भूरे रंग का मल त्याग करती है। कीट से प्रभावित खेत की पहचान दूर से ही किया जा सकता है। सूंडी के शरीर के आखिरी से पहले (उपांतिम) खण्ड में चतुर्भुज आकार में व्यवस्थित चार काले धब्बे होते हैं और सिर पर एक उल्टे Y के आकार का सफेद से भूरा निशान होता है।

पहचानः वयस्क पतंगों के अग्र पंख पर विशेष भूरे रंग के धब्बे होते हैं जबकि पिछले पंखों की रंगत सुस्त होती है। वयस्क मादा कीट 50 से 100 के झुण्ड में अण्डे देती है और पूरे जीवन काल में 2000 अण्डे तक दे सकती है। अंडे के समूह को मादा उदर के सुरक्षात्मक सल्कों से ढक देती है। सूंडी अवस्था अधिक क्षतिकारक अवस्था है जो कि 14–28 दिनों का होता है और प्यूपा अवस्था जमीन में रहता है।

प्रबंधनः खेतों की गहरी जुताई करने से फॉल आर्मीवर्म के प्यूपा बाहर आ जाते हैं और उनको परभक्षियों द्वारा खा लिया जाता है। स्वच्छ कृषि, संतुलित उर्वरकों के प्रयोग व मक्के में उपयुक्त दलहनी फसलों का सह–फसलीकरण (उदाहरण के लिये, मक्का+राजमा/उर्द/मूंग) करने से इस कीट को फैलने में कमी लायी जा सकती है। फसल की शुरूआती चरण (30 दिनों) के दौरान 10 पक्षी पर्चे/एकड़ की दर से लगाना चाहिए। पक्षी, फॉल आर्मीवर्म के व्यस्क पतंगों व लार्वा को खाकर उनकी संख्या को कम करते हैं। 5 प्रतिशत नीम के बीज का सत् अथवा नीम का तेल 2 मिली./ली. की दर से छिड़काव प्रतिकर्षक का कार्य करता है। इस कीट से निपटने के लिए क्षेत्र में प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण ही सबसे अच्छा तरीका है। खेत में दलहनी फसलों को लगाकर कीटों के प्राकृतिक दुश्मनों (परभक्षी व परजीवी) का संरक्षण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त, गंधपास ट्रैप में 3 से अधिक वयस्क आकर्षित होने पर परजीवी कीटों *ट्राईकोग्रामा प्रेटिओसम* अथवा *टेलीनोमस रेमस* 50000/एकड़ की दर से एक सप्ताह के अंतराल पर प्रयोग करें। यह कीट फॉल आर्मीवर्म के अण्डों को खाकर नष्ट कर देते हैं। जैव कीट रोगकारक फफूँद *मेटारिजियम एनिसोपीली* 5 ग्राम/लीटर की दर से 15–25 दिन के पौधों की विशेष तौर पर पर्णचक्र में छिड़काव करने से यह फसल कीट से सुरक्षित रहता है। जैव कीटनाशक जीवाणु *बैसिलस थुरिंजिएसिंस* 2 ग्राम/लीटर की दर से छिड़काव भी प्रभावकारी पाया गया है। बुवाई से पहले साएन्ट्रैनिलिप्रोल 19.8ः + थायमिथोक्जैम 19.8ः संयोजन का 6 मिली/किग्रा. बीज की दर से बीजोपचार प्रभावी पाया गया है। इमामैक्टिन बैंजोएट 0.4 ग्राम या स्पाईनोसाड या क्लोरैन्ट्रानिलिप्रोल या इंडोक्साकार्ब या फ्लुबैंडायमाइड 0.3 मिली/लीटर का छिड़काव बहुत प्रभावकारी है। पूर्ण विकसित सूंडी के लिए गोभ में विषाक्त चारा का प्रयोग करें। विषाक्त चारा बनाने के लिए 10 किग्रा. चावल का चोकर + 2 किग्रा. गुड़ को 3 लीटर पानी में 24 घण्टे के लिए किण्वन (फरमैन्टेशन) करें। पूर्ण विकसित सूंडी को आकर्षित कर मारने के लिए प्रयोग से आधे घण्टे पूर्व चारे में 350 मिली. मोनोक्रोटोफास को मिश्रित करें।

मंडुवा एवं मादिरा के प्रमुख कीट

1. कुरमुलाः इस के क्षति के लक्षण, पहचान व प्रबंधन का वर्णन धान के अंतर्गत दिए गए हैं।

2. तना बेधक कीटः मंडुवा और मादिरा में तना बेधक कीट का प्रकोप होता है। इनके क्षति के लक्षण, पहचान व प्रबंधन का विस्तृत वर्णन धान के अंतर्गत दिए गए हैं।

3. प्ररोह मक्खीः इस के क्षति के लक्षण, पहचान व प्रबंधन का वर्णन मक्का के अंतर्गत दिए गए हैं।

4. माहू

क्षति के लक्षणः इसके शिशु व वयस्क दोनों ही रस चूसकर पौधों की वृद्वि को कम कर देते हैं एवं पत्तियों में मरोड़ जैसे लक्षण दिखते हैं।

पहचानः ये छोटे, मुलायम व भूरे काले रंग के कीट होते हैं एवं कालोनी में पाये जाते हैं।

प्रबंधनः कॉक्सीनेलिड एवं सिरफिड मित्र कीट माहू को खाते हैं। अधिक प्रकोप होने पर एसीटामिप्रिड 20 एस.पी. की 0.3 ग्राम या इमिडाक्लोप्रिड 17ण्8 एस.एल. की 0.3 मि.ली. मात्रा प्रति ली. पानी की दर से छिड़काव करें।

रामदाना/चुआ के प्रमुख कीट

1. पर्ण जालक

क्षति के लक्षणः यह कीट पत्तियों को खाकर अत्यधिक नुकसान पहुँचाता है जिससे पत्तियों में केवल जाली सी बची रह जाती है। इनकी सूंडियाँ अनियमित रूप से पत्तियों को खाती हैं। जिस पत्ती को खाती हैं वह मुड़ कर जाले जैसी हो जाती हैं व गिर जाती हैं।

पहचानः वयस्क पतंगे भूरे–काले एवं पंखों में लहरदार सफेद निशान होते हैं। सूंडियाँ हरे रंग की व उन पर लाइन होती हैं एवं वक्ष में काला अर्धचंद्राकार निशान होता है।

प्रबंधनः प्रकाश प्रपंच से वयस्कों को आकर्षित कर नष्ट किया जा सकता है। जैवकीटनाशी बैसिलस थूरिन्जिएन्सिस की 1.5 ग्रा./ली. पानी की दर से छिड़काव भी काफी कारगर होता है। अधिक प्रकोप होने पर कीटनाशी कारटाप हाइड्रोक्लोराइड 50 एस.पी. का 1.0 ग्रा./ली. पानी में घोल का छिड़काव करना चाहिए।

2. चुआ वीविल

क्षति के लक्षणः वयस्क वीविल पत्तियों को खाती हैं जबकि ग्रब तने में छेद कर अंदर के भाग को खाते हैं। ग्रब के प्रकोप से पर्णवृंत मोटे हो जाते हैं जिससे पत्ती सूख कर गिर जाती हैं। ये मुख्य तना के ऊपरी भाग को भी प्रभावित करते हैं फलतः तना टूट जाता है।

पहचानः वयस्क वीविल राख के रंग की होती है एवं थूथन लंबा व निकला हुआ होता है। ये अंडे एक–एक कर तना, शाखा, पर्णवृंत या मध्य शिरा में बनाए गए छेद में देती है।

प्रबंधनः क्षति ग्रस्त पौधों एवं आस–पास में जंगली चुआ के पौधों को नष्ट कर दें। मैलाथियान 5ः धूल का 20.0 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर की दर से बुरकाव करें।

उगल के प्रमुख कीट

माहूः माहू के क्षति के लक्षण, पहचान व प्रबंधन का वर्णन सोयाबीन के अंतर्गत दिया है।

सोयाबीन के प्रमुख कीट

1. बिहार रोऐंदार सूंडियाँ

क्षति के लक्षणः इस कीट की सूंडियाँ पत्तियों को खाकर जालनुमा बना देती हैं। इससे पौधा पूरी तरह सूखकर नष्ट हो जाता है।

पहचानः वयस्कएक तितली होती है जो अपने अण्डों को गुच्छों में पौधों पर देती है। इनके अण्डे से सूंडियाँ निकलकर शुरूआत में गुच्छों मे रहती हैं परन्तु जैसे–जैसे बड़ी होती है, आस–पास के पौधों पर फैलकर भारी क्षति पहुँचाती हैं।

प्रबंधनः प्रकाश प्रपंच से वयस्कों को आकर्षित कर नष्ट किया जा सकता है। अंडों के समूह और रोऐंदार सूंडी के झुंड को शुरूआती अवस्था में ही चुनकर नष्ट कर सकते हैं। कीट का अधिक प्रकोप होने पर रासायनिक नियंत्रण के लिए प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. की 2.0 मि.ली. या इण्डॉक्साकार्ब 14.5 ई.सी. की 0.5 दवा प्रति ली. पानी की दर से छिड़काव करें।

2. गर्डल भृंग

क्षति के लक्षणः इस कीट के भृंग के प्रकोप से तनों के मध्य या पर्णवृंत के समानान्तर दो जगह 2–3 से.मी. की दूरी पर कटाव दिखाई पड़ते हैं एवं ऊपर की पत्तियाँ सूखी हुई नजर आती हैं। इस भृंग के प्रकोप से कभी–कभी पूरा पौधा भी सूख जाता है। इनके कोमल शरीर वाले, छोटे, पीले भृंगक पर्णवृंत या तने के कटे हुए भाग के भीतर नीचे की ओर सुरंग बनाते हुए पाये जाते हैं।

पहचानः वयस्क भृंग लाल–भूरे, कठोर शरीर वाले होते हैं जिनकी विशिष्ट श्रृंगिकाएं होती हैं।

प्रबंधनः पौधों की उचित संख्या एवं अत्यधिक नत्रजन नहीं डालने से इन कीटों की संख्या में कमी आती है। प्रभावित भागों या पौधों को हटाने से आगे फैलने से रोक सकते हैं। बुवाई के समय कार्बोफ्यूरान 3 जी. का 30 कि.ग्रा./हैक्टेयर की दर से उपयोग प्रभावी होता है।

3. चूसक बग

क्षति के लक्षणः ये कीट पत्तियों का रस चूसते हैं तथा जहरीली लार भीतर डाल देते हैं जिससे पत्तियों में छोटे–छोटे सफेद, ऊतकक्षय (नेक्रोटिक) धब्बे दिखाई देते हैं। ये सामान्यतः पत्तियों की निचली सतह में छुप जाते हैं एवं छायादार स्थानों में ज्यादा पाये जाते हैं।

पहचानः चूसक बग आकार में बहुत छोटे एवं भूरे रंग के होते हैं इनका आधा पंख कठोर एवं आधा पंख मुलायम होता है।

प्रबंधनः फसल को पास–पास न लगाएं। बतैन गिरि के सत् (5 प्रतिशत) का छिड़काव करने से इनके वयस्क को रस चूसने व अंडे देने से रोक सकते हैं। इसके नियंत्रण हेतु इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 0.3 मि.ली. या कारटाप हाइड्रोक्लोराइड 50 एस.पी. की 1.0 ग्रा. दवा प्रति ली. पानी की दर से छिड़काव करें।

4. हिस्पिड भृंग

क्षति के लक्षणः इस कीट के गिडार के प्रकोप से पत्तियों पर गोल–गोल सफेद फफोले जैसी रचना बन जाती है। जब फफोलों को फोड़कर देखेगें तो उनमें छोटा गिडार दिखाई पड़ता है। इस कीट के वयस्क पत्तियों के पर्णहरित (क्लोरोफिल) को खाते हैं एवं खाने के विशिष्ट निशान छोड़ते हैं।

पहचानः वयस्क भृंग छोटे, भूरे व बगल में काले रंग के होते हैं एवं इनके पूरे शरीर पर कांटे होते हैं। इनके गिडार दूधिया सफेद व मोटे होते हैं एवं पत्तियों में बने फफोलों के अंदर खाते हुए पाये जाते हैं।

प्रबंधनः फसल की बुआई उचित दूरी पर करनी चाहिए। इसके नियंत्रण के लिए कारटाप हाइड्रोक्लोराइड 50 एस.पी. की 1.0 ग्रा. दवा प्रति ली. पानी की दर से छिड़काव करें।

5. माहू

क्षति के लक्षणः इस कीट के वयस्क तथा शिशु दोनों ही मुलायम पत्तियों के निचले भाग एवं शिराओं से रस चूसकर हानि पहुँचाते हैं फलस्वरूप पत्तियों में मरोड़/कुंचन जैसे लक्षण दिखाई पड़ते हैं। इनका अधिक प्रकोप होने पर पौधों का विकास रूक जाता है। माहू कीटों के मलमूत्र से काली कवक की वृद्वि हो जाती है एवं पौधे पर काली परत जमा हो जाती है।

पहचानः ये छोटे, मुलायम व हरे रंग के होते हैं एवं कालोनी में पाये जाते हैं। इस कीट के वयस्क तथा शिशु दोनों ही क्षति पहुँचाते हैं।

प्रबंधनः परभक्षी कीट सप्तभृंग (कॉक्सीनेलिड) को प्रभावित क्षेत्रों में बढ़ावा देना चाहिए। एसीटामिप्रिड 20 एस.पी. की 0.3 ग्राम अथवा इमिडाक्लोप्रिड 17ण्8 एस.एल. की 0.3 मि.ली. प्रति ली. पानी में घोल बनाकर 30 दिनों के अन्तराल पर छिड़काव करें।

फ्रासबीन/राजमा के प्रमुख कीट

1. चूसक बगः इसके क्षति के लक्षण, पहचान व प्रबंधन का वर्णन सोयाबीन के अंतर्गत है।

2. फफोला भृंग

क्षति के लक्षणः यह कीट दलहनी फसलों के अतिरिक्त आलू, भिण्डी, लौकी, कद्दू आदि फसलों को भी क्षति पहुँचाता है। इस कीट का प्रकोप जुलाई से अक्टूबर तक ज्यादा होता है।

पहचानः इसका वयस्क भृंग आकार में बड़ा एवं काला व इसके पंखों पर लाल धारियां होती हैं। ये पत्तियों, कोमल शाखाओं, फूलों एवं फलियों को खाकर भारी क्षति पहुँचाते हैं। ज्यादा प्रकोप होने पर फसल कुछ घंटों में ही नष्ट हो जाती है।

प्रबंधनः कम प्रकोप होने पर भृगों का चुनकर नष्ट कर देना चाहिए। रासायनिक नियंत्रण हेतु डेल्टामेथ्रिन की 1.0 मि.ली. या इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 0.3 मि.ली. प्रति ली. पानी का प्रयोग किया जा सकता है।

3. माहूः इसका प्रबंधन सोयाबीन में दिये गये सुझावों के अनुसार करें।

गहत के प्रमुख कीट

1. चूसक बग एवं बिहार रोऐंदार सूंडीः इनके क्षति का लक्षण, पहचान व प्रबंधन का वर्णन सोयाबीन के अंतर्गत है।

2. फफोला भृंगः इनके क्षति का लक्षण, पहचान व प्रबंधन का वर्णन फ्रासबीन/राजमा के अंतर्गत है।

अरहर के प्रमुख कीट

1. फफोला भृंगः इनके क्षति का लक्षण, पहचान व प्रबंधन का वर्णन फ्रासबीन/राजमा के अंतर्गत है।

2. फली छेदक

क्षति के लक्षणः अंडे से निकलने के पश्चात सूंडियाँ फलियों में छेदकर दानों को खा जाती हैं।

पहचानः यह एक भूरे रंग की छोटी सलभ होती है जो अपने सफेद रंग के छोटे अण्डे एक–एक कर फलियों एवं पत्तियों पर देती है।

प्रबंधनः एक हैक्टेयर में 12 फेरोमोन ट्रैप का प्रयोग करें। प्रारंम्भिक अवस्था की सूंडियों के नियंत्रण के लिए *बैसिलस थूरिन्जिएन्सिस* का 1.0 कि.ग्रा./है. की दर से छिड़काव करें। रासायनिक नियंत्रण के लिए प्रोफेनोफॉस 50 ई.सी. की 2.0 मि.ली. या इण्डॉक्साकार्ब 14.5 ई.सी. की 1.0 मि.ली. दवा प्रति ली. पानी की दर से छिड़काव करें।

3. फली बग

क्षति के लक्षणः शिशु एवं वयस्क दोनों ही विकासशील फलियों से रस चूसकर नुकसान पहुँचाते हैं। इन फलियों में भूरे धब्बे बन जाते हैं। फलियों में दाने अच्छे से नहीं बनते हैं या सिकुड़े से बनते हैं।

पहचानः ये बग लंबे, बेलनाकार एवं इनका विशिष्ट रोस्ट्रम दिखाई देता है। अंडे झुण्ड में फलियों या पत्तियों में देती हैं।

प्रबंधनः आवश्यकतानुसार कीटनाशक जैसे इमिडाक्लोप्रिड 17.8 एस.एल. की 0.3 मि.ली.या क्लोरपायरीफॉस 20 ई.सी. की 2.0 मि.ली. प्रति ली. पानी की दर से छिड़काव शाम के समय करें।

कद्दू वर्गीय सब्जियों के कीट

1. लाल कद्दू भृंग

क्षति के लक्षणः यह एक कीट कद्दू, पेठा, लौकी, तोरई, ककड़ी आदि का प्रमुख कीट है। वयस्क कीट पत्तियों काटकर खाते हैं। इसके भृंगक अण्डों से निकलकर अन्दर के तनों, जड़ों अथवा जमीन से लगे हुए फलों को खाते हैं। कीट के प्रकोप से पौधे सूख कर मर जाते हैं।

पहचानः इसका वयस्क भृंग चमकदार नारंगी रंग का होता है। वयस्क पत्तियों को खाते हैं। मादा पीले रंग के अण्डों को पौधों के निकट जमीन में देती है। प्यूपा भी जमीन में ही बनता है। इसका जीवन चक्र लगभग 30–55 दिनों का होता है।

प्रबंधनः गहरी जुताई करें जिससे मिट्टी में पल रहे भृंगक तथा प्यूपा दोनों नष्ट हो जाऐं। अगेती बुवाई से इस कीट का प्रकोप कम होता है। जब भी इस कीट के वयस्क फसल पर दिखें तब मिट्टी को खुरच दें जिससे भृंगक ऊपर आ जाएं एवं सूर्य से व परभक्षी इन्हें नश्ट कर दें। वयस्क कीटों के लिए राख का बुरकाव भी काफी लाभदायक होता है। खेत में वयस्क कीट दिखाई देने पर कार्बेरिल 50 डब्लू.पी. 2.0 ग्रा. प्रति कि.ग्रा. राख या रेत में मिलाकर खेत में बुरकाव करें।

2. फल मक्खी

क्षति के लक्षणः इस कीट का प्रकोप वर्षा ऋतु में सर्वाधिक देखने को मिलता है। यह कीट लौकी, करेला, तोरई इत्यादि को क्षति पहुँचाता है। वयस्क मादा मक्खी फलों के बाह्य त्वचा में छेद करके अंडे दे देती है। अण्डों से शिशु निकलकर फल के गूदे को खाते हैं जिससे फल का आकार टेढ़ा हो जाता है और बाद में फल सड़ कर गिर जाते हैं।

पहचानः इसका वयस्क लाल भूरे रंग का होता है। इसके सिर पर लाल काले तथा सफेद धब्बे पाये जाते हैं। वक्ष पर हरापन लिए हुए पीले रंग की लम्बी मुड़ी हुई धारियाँ होती हैं। इस कीट का शिशु मुख्य हानिकारक अवस्था है।

प्रबंधनः गर्मी में खेतों की गहरी जुताई करें। क्यू ल्यूर ट्रैप से वयस्क मक्खियों को आकर्शित कर पकड़ लेते हैं एवं यह कद्दू वर्गीय सब्जियों में काफी प्रभावी पाया गया है। मैलाथियान 50 ई.सी. की 20 मि.ली. तथा 200 ग्रा. गुड़ या चीनी को 20 ली. पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

पारम्परिक फसलों के मूल्यवर्धित उत्पाद

शेर सिंह एवं श्याम नाथ

भाकृअनुप–वि.प.कृ.अनु.सं, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

उत्तराखण्ड एक पर्वतीय राज्य है इसकी अर्थव्यवस्था में कृषि बहुत महत्वपूर्ण है। पर्वतीय क्षेत्रों में मुख्यतः पारम्परिक खेती होती है जिसमें मुख्य पारम्परिक फसलें रागी, मादिरा, धान, गेहूं, जौ, गहत, भट्ट, मसूर, चौलाई, उगल, आदि शामिल है। ये फसलें खाद्य सुरक्षा एवं पोषण के साथ–साथ पशुपालन को भी मजबूती व सुरक्षा प्रदान करती हैं। पारम्परिक फसलों पर आधारित पौष्टिक गुणवत्ता युक्त मूल्यवर्धित उत्पाद बनाने हेतु विभिन्न संस्थानों जैसे भाकअनुप–वि.प.कृ.अ.सं.अल्मोड़ा, गो.ब.प.कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय पंतनगर, केन्द्रीय खाद्य प्रौद्योगिकी शोध संस्थान, मैसूर और कृषि विश्वविद्यालय, धारवाड़, कर्नाटक ने विभिन्न तकनीकें विकसित की हैं, जिन्हें अपनाकर पर्वतीय कृषक महिलायें अपने सीमित संसाधनों द्वारा आय उपार्जन कर सकते हैं। पारम्परिक फसलों से निर्मित पौष्टिक गुणवत्ता युक्त मूल्यवर्धित उत्पाद निम्न हैं:

मंडुवे के पौष्टिक बिस्कुट

मंडुवे की पौष्टिकता व लाभ को देखते हुए मंडुवे के आटे से बने बिस्कुट की बहुत मांग है।

मंडुवे के बिस्कुट (ओवन के उपयोग से निर्मित)

आवश्यक सामग्री

मंडुवे का आटा	150 ग्राम
गेहूँ का आटा	50 ग्राम
ताजी क्रीम या दूध	100 ग्राम
कैस्टर शुगर (पिसी हुई)	100 ग्राम
बेकिंग पाउडर	5 ग्राम (एक छोटा चम्मच)
वैनिला ऐसैन्स (सुगन्ध)	4–5 बूँद

बनाने की विधि

सभी आवश्यक सामग्री (क्रीम तथा दूध को छोडकर) ठीक से 2–3 बार छानकर एक साथ मिला लें। छने हुये मिश्रण को क्रीम या दूध से गूंध लें। गुंधे हुए आटे से छोटी–छोटी गोलियाँ बना लें। इन गोलियों को हाथ से बिस्कुट के रूप में समतल एवं गोल कर लें। इस प्रकार बने हुए बिस्कुट को ओवन की ट्रे में घी लगा कर सेकने के लिये रखें।ओवन का तापमान 150 डिग्री सेन्टीग्रेड रखें तथा 30 मिनट तक ओवन में सेकें। ठण्डा होने पर परोसें।

मंडुवे के बिस्कुट (साधारण तवे के उपयोग से निर्मित)

आवश्यक सामग्री

मंडुवे का आटा	1 कटोरी (160 ग्राम)
कैस्टर शुगर	1 कटोरी (80 ग्राम)
घी	तीन बड़े चम्मच (80 ग्राम)
तेल	दो बड़े चम्मच (50 ग्राम)
बेकिंग पाउडर	5 ग्राम (एक छोटा चम्मच)
ऐसैन्स	कुछ बूँदें
पानी	8 बड़े चम्मच

बनाने की विधि

मंडुवे का आटा, चीनी तथा बेकिंग पाउडर को एक साथ मिलाकर दो तीन बार छानें। छने हुये आटे में तेल डालकर हाथ से आटे को मसल लें। पानी मिलाकर आटे को गूंध लें। गुंधे हुये आटे को बेलकर बिस्कुट के आकार में काट लें। गैस पर तवा रखकर गर्म करें तथा हल्का घी लगाकर सभी बिस्कुट धीमी आँच पर सेकने के लिये फैला दें। तवे को ढक्कन से ढक दें। 15 मिनट के बाद जब बिस्कुट थोड़े भूरे रंग के हो जायें, तब उनको तवे से हटा लें।ठण्डा होने के बाद वायुरहित डब्बे में भरकर रख दें। पैक किये हुये बिस्कुट को बिना किसी परिरक्षण के 45–60 दिनों तक आसानी से रख सकते हैं।

मंडुवे के शिशु आहार

मंडुवे में कैल्शियम और लौह तत्वों की प्रचुरता इसे विभिन्न प्रकार के शिशु आहार बनाने हेतु उपयुक्त बनाती है। मंडुवे पर आधारित इस प्रकार के अनेक उत्पाद बाजार में, विशेषतौर पर दक्षिण भारत में उपलब्ध हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में मंडुवे के माल्ट को शिशु आहार के रूप में बाजार में उपलब्ध उत्पाद जैसे सेरेलैक, फेरैक्स, इत्यादि के सस्ते और घरेलू विकल्प के तौर पर उपयोग किया जाता रहा है।

मंडुवे का माल्ट

मंडुवे के माल्ट और जौ के माल्ट के मिश्रण से निर्मित स्थानीय पेय 'छांग' पर्वतीय क्षेत्रों की कुछ जनजातियों में लोकप्रिय है।

आवश्यक सामग्री

मंडुवा	100 ग्राम
जौ	25 ग्राम
इलायची	2 ग्राम
चीनी	5 ग्राम

बनाने की विधि

मंडुवे और जौ को रातभर अलग–अलग भिगोयें। मंडुवे को दो दिन और जौ को एक दिन के लिए अंकुरित करें। अंकुरित बीज को सुखायें और रगड़ कर छिलका अलग कर लें। मंडुवे, जौ और इलायची को मिलायें और पीस लें। इस मिश्रण को वायुरहित डिब्बे में भण्डारित करें। एक कप पानी (200 मि.ली.) में 5 चाय–चम्मच माल्ट पाउडर मिलायें और बिना ढेलों का घोल बना लें।आधे लीटर पानी को अलग से गर्म कर उसमें तैयार किये हुये घोल को धीरे–धीरे मिलायें। इस मिश्रण को लगातार चलाते हुये उबालें। स्वादानुसार दूध और चीनी मिलायें। ठण्डा या गर्म परोसें।

मंडुवा व मादिरा की नमकीन

आवश्यक सामग्री

मंडुवे या मादिरा का आटा	100 ग्राम
बेसन	300 ग्राम
रामदाना का आटा	2–3 चाय चम्मच
हींग	आधा चाय चम्मच
रिफाइंड तेल	1 लीटर
लहसुन की फाँकें	10–12
मूंगफली दाना	50 ग्राम
नमक	स्वादानुसार
लाल मिर्च पाउडर	स्वादानुसार

बनाने की विधि

हींग को एक कटोरी गुनगुने पानी में घोल लें। मंडुवे तथा रामदाना के आटे को बेसन के साथ मिलाकर हींग के घोल में गूंध लें। गुंधे हुये आटे को नरम रखें, ताकि आटा नमकीन बनाने वाली मशीन के छिद्रों से सरलता से गुजर सके। तेल को कढ़ाई में अच्छी तरह से गर्म कर लें और मशीन के द्वारा गुंथे हुये आटे की सेवियाँ बनाकर तलें। तली हुयी खस्ता सेवियों को सूखे साफ कपड़े अथवा कागज पर उतार लें। लहसुन, मूंगफली और कढ़ी पत्ता को तेल में अलग–अलग तल लें। तली हुयी खस्ता सेवियों के लच्छों के छोटे टुकड़े कर लें और तले हुये लहसुन, मूंगफली और कढ़ी पत्ता को मिला लें। स्वादानुसार नमक व लाल मिर्च समान रूप से मिला लें। इस प्रकार तैयार नमकीन को वायुरहित डिब्बे में भण्डारित करें।

मादिरा का केक

आवश्यक सामग्री

मादिरा का आटा : 400 ग्राम

गेहूँ का आटा	: 600 ग्राम
बेकिंग सोडा	: 50 ग्राम (एक छोटा चम्मच)
अण्डा	: दो
तेल	: 125 मि.ली. (एक कप)
वेनिला सुगन्ध	: कुछ बून्दें
चीनी	: एक कप (पिसी हुई)

बनाने की विधि

मादिरा एवं गेहूँ के आटे में बेकिंग सोडा मिलाकर सूखा मिश्रण बना लें। अण्डे को तोड़ कर तेल एवं चीनी में अच्छी तरह फेंट ले ताकि इसका दूधिया रंग का घोल बन जाए। अब इसमें वेनिला सुगन्ध को मिला लें। आटे के सूखे मिश्रण को दूधिया रंग के घोल में मिला लें। अगर मिश्रण गाढा हो तो इसमें एक या दो चम्मच दूध मिला लें। केक बनाने वाले सांचे को तेल व आटा लगाकर चिकना कर लें। केक के मिश्रण को सांचें में डाले। माइक्रोवेव ओवन को स्टार्ट करें एवं जब इसका तापमान 180 डिगी सैंटीग्रेड पहुंच जाए तो केक के मिश्रण से भरे सांचें को इसमें 30 से 35 मिनट के लिए रख दें। 30 से 35 मिनट बाद अगर केक में चाकू घुसाया जाए और ये चाकू अगर बिलकुल साफ बाहर निकलें तो समझ लें कि केक तैयार हो गया है।

मादिरा की क्रिस्पीज

आवश्यक सामग्री

मादिरा	250 ग्राम
नमक	स्वादानुसार
मेथी दाना	5 ग्राम (एक छोटा चम्मच)
बेकिंग सोडा	एक चुटकी

बनाने की विधि

मादिरा को साफ करके 24 घण्टे के लिये पानी में भिगाकर रखें। आधे लीटर पानी में भीगे हुये मादिरा को प्रेशरकुकर में डालकर 10 मिनट तक पकायें। पकाये हुये मादिरा को मसलकर गाढ़ा पेस्ट बना लें। धूप में प्लास्टिक की शीट बिछाकर एक दूसरी छोटी पॉलीथीन जिसमें छोटा छेद किया हो, उसमें थोड़ा–थोड़ा पेस्ट लेकर बड़ी पॉलीथीन के ऊपर छोटे–छोटे गोल छल्ले बनाकर धूप में अच्छी तरह सुखा लें। सूखने के बाद जब ये छल्ले अपने आप पॉलीथीन से निकल जायें, तब इनको ठण्डा करके एक वायुरहित डिब्बे में भर कर रख लें। खाने से पहले इन्हें घी में पापड़ की तरह तल लें। मादिरा की क्रिस्पीज बनाने के लिये एक बार में ज्यादा मात्रा में मादिरा न उबालें, अन्यथा चिकना पेस्ट बनाने में दिक्कत आ सकती है।

मादिरा के पापड़

आवश्यक सामग्री

मादिरा	250 ग्राम
नमक	स्वादानुसार
मेथी दाना	5 ग्राम (एक छोटा चम्मच)
बेकिंग सोडा	एक चुटकी

बनाने की विधि

मादिरा को साफ करके 24 घण्टे के लिये पानी में भिगाकर रखें। आधे लीटर पानी में भीगे हुये मादिराको प्रेशरकुकर में डालकर 10 मिनट तक पकायें। पकाये हुई मादिरा को मसलकर गाढ़ा पेस्ट बना लें। धूप में प्लास्टिक की शीट बिछायें और उसमें थोड़ा सा तेल लगाकर चम्मच की सहायता से छोटे–छोटे पापड़ फैलायें। धूप में अच्छी तरह तब तक सुखायें, जब तक पापड़ अपने आप प्लास्टिक शीट से निकल न आयें। पापड़ को ठण्डा करके एक वायुरहित जार में रख लें। खाने से पहले इन्हें घी में पापड़ की तरह तल लें। उबले हुये मादिरा से पेस्ट बनाते समय चिकनाई का ध्यान रखें।

भट्ट से दूध एवं पनीर (टोफू)

भट्ट (काली सोयाबीन)	1 कि.ग्रा.
पानी	7–8 लीटर
सिट्रिक एसिड	2 ग्राम सिट्रिक एसिड प्रति लीटर सोया दूध के हिसाब से

भट्ट का दूध बनाने की विधि

एक किलोग्राम साफ एवं सूखी हुई भट्ट से लगभग 7 से 8 लीटर सोया दूध बनाया जा सकता है। इस 8.0 लीटर दूध को जमाकर 1.00 से 1.25 कि०ग्रा० सोया टोफू प्राप्त किया जा सकता है। यह प्रक्रिया थोड़ी सी लम्बी (1 से 1.5 घंटा) जरूर है परन्तु अगर आपने एक बार घर पर सोया दूध या सोया टोफू बना लिया तो आप इसे बहुत ही आसान, सस्ता और स्वस्थ पाएगें। साफ छंटी हुई अच्छी गुणवत्ता की सूखी भट्ट (1 कि.ग्रा.) किसी पात्र में

लेकर पानी से धो लें और फिर लगभग 2 से 3 लीटर साफ पानी में 8 से 10 घंटों तक सामान्य तापमान पर भिगो दें। भट्ट को पानी के साथ गूँथना/रगड़ना शुरू करें ताकि इसका छिलका अलग हो जाए। छिलका उतारने से सोया दूध एवं सोया टोफू का स्वाद अच्छा होता है। भट्ट को पीसने से पहले 3 से 4 बार पानी में धो लें। छिलका रहित धुली हुई भट्ट को मिक्सी या सिलवटे से दरदरा पीस लें। अब इसमें लगभग 7 से 8 लीटर पानी मिला कर घोल बना लें। ध्यान रहे उक्त पानी को भट्ट पीसते समय भी मिला सकते है। अब इस भट्ट के घोल को कुकर या किसी और बर्तन में सामान्य आँच के द्वारा 30 मिनट तक लगभग 90 से 100 डिग्री सेंटीग्रेड तापमान आने तक पकाएं। सोया दूध को कुकर या बर्तन की तली में चिपकने से बचाने हेतु मिश्रण को लगातार कड़छी या चम्मच से हिलाते रहें। दूध को पकाते समय कड़छी या चम्मच से झाग और पपड़ी निकालते रहे ताकि सोयाबीन में आने वाली महक (बीनी स्वाद) खत्म हो जाए। सोया घोल को 90 से 100 डिग्री सैंटीग्रेड तक उबालने के बाद इसे सूती कपड़े या मलमल के बारीक कपड़े में छान लें। इस प्रकार हमें एक कि०ग्रा० भट्ट से लगभग 7 से 8 लीटर दूध मिलेगा तथा 200 ग्राम ओकारा (सुखाने के बाद) भी प्राप्त होगा।

भट्ट से पनीर (टोफू) बनाने की विधि

सोया दूध को फाड़ने हेतु 2 ग्राम सिट्रिक एसिड प्रति लीटर सोया दूध के हिसाब से प्रयोग करें। सिट्रिक एसिड का घोल बनाने के लिए आधा लीटर गर्म पानी (70° से 80° सैंटीग्रेट) में वांछित सिट्रिक एसिड को मिला दें। सोया दूध का तापमान लगभग 70 से 80 डिग्री सैंटीग्रेड आने पर सिट्रिक एसिड का घोल इसमें मिला दें। सिट्रिक एसिड डालते समय दूध को धीरे–धीरे हिलाते रहें ताकि दूध में मौजूद प्रोटीन फट कर जम जाए। फटे दूध को थक्के बनने/जमने के लिए 5 मिनट तक इंतजार करे। फटे हुए सोया दूध को मलमल के कपड़े में डालकर अच्छी तरह छान ले और कपड़े को चारों तरफ से ऊपर उठा कर इसके मुँह को पकड़कर घुमाते हुए जोर से कसें और इसका फालतू मठ्ठा/छॉछ निचोड़ दें। कपड़े का मुँह बांधकर पोटली बना दें व पोटली को तसला/पराद में रख दें और इस पर एक प्लेट रखकर उस पर कोई वजनदार वस्तु 5–10 मिनट तक रख दें। इससे अधिकाशं पानी निकल जाएगा और अन्त में 1.00 से 1.25 किलोग्राम उच्च गुणवत्तायुक्त सोया पनीर (टोफ़ू) प्राप्त होगा। मलमल के कपड़े को खोलकर टोफू की शिला/पिण्ड को निकालें और लगभग 30 मिनट तक ठण्डे पानी में रख दें। टोफू के छोटे–छोटे टुकड़े करके आवश्यकतानुसार प्रयोग करें। अगर बाद में प्रयोग करना हो तो इसे पानी में रख दें। भट्ट के दूध को सीधे या फिर इसमें अपने स्वादानुसार कोई फ्लेवर मिलाकर प्रयोग किया जा सकता है। सोया दूध को कॉफी, दही एवं खीर के लिए भी प्रयोग कर सकते है। सामान्य पनीर की तरह सोया टोफू से लगभग प्रत्येक पकवान बनाया जा सकता है। सोया टोफू एक बहुउपयोगी खाद्य पदार्थ है जिससे विविध प्रकार के मूल्य–वर्धित उत्पाद बनाए जा सकते है। टोफू को भारतीय पाक–शैली में बड़ी सुगमता से प्रयोग किया जा सकता है।

पारंपरिक फसलों की विपणन रणनीति

कुशाग्रा जोशी

भाकृअनुप–वि.प.कृ.अनु.सं, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

पारंपरिक प्रायः अल्पदोहित फसलें हैं जिन्हें भुला दिया गया या उपेक्षित किया गया है लेकिन फिर भी देशी कृषि प्रणालियों में इनको देखा जा सकता है। नीति निर्माताओं और जनता के बीच पिछले 5–10 वर्षों में भोजन की गुणवत्ता के साथ–साथ विविध स्रोतों से खाद्य पदार्थ की गुणवत्ता के संबंध में दृष्टिकोण में बदलाव देखा जा रहा है। पारंपरिक फसलें मुख्य रूप से अपने मूल केंद्रों या विविधता के केंद्रों में पारम्परिक किसानों द्वारा उगाई जाती हैं, जहाँ वे अभी भी स्थानीय समुदायों के निर्वाह के लिए महत्वपूर्ण हैं।

कई अल्पदोहित पारंपरिक फसलें सूखे और गर्मी तनाव के प्रति सहिष्णु हैं, कीटों और रोगों के लिए प्रतिरोधी हैं, और अर्ध–शुष्क और शुष्क वातावरण के लिए अनुकूलित हैं। इसके अलावा, अधिकांश पारंपरिक फसलें पोषक तत्व युक्त हैं और आहार में विविधता लाने और सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को दूर करने में उपयोगी हो सकते हैं। इस प्रकार, सीमांत कृषि उत्पादन क्षेत्रों में उनके संवर्धन से ग्रामीण लोगों द्वारा पौष्टिक भोजन की उपलब्धता और पहुँच में सुधार हो सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में उनका संवर्धन नई मूल्य श्रृंखलाओं के विकास के माध्यम से ग्रामीण आर्थिक विकास के अवसर भी पैदा कर सकता है। अधिकांश की कीमतें विपणन विकास से उनके निरंतर उपयोग का समर्थन करने और स्थानीय उत्पादकों और श्रृंखला इकाई के लिए टिकाऊ आय पैदा कर सकती हैं।

विपणन की रणनीति

बाजार तक पहुँच किसी भी कृषि उत्पाद के विपणन के लिए आवश्यक है, परन्तु पारंपरिक फसलों की भारत में बाजार तक पहुँच भली प्रकार विकसित नहीं हो पाई है। इन फसलों के विपणन रणनीति बनाने की आवश्यकता है, जैसे i) अल्पदोहित फसलों की उत्पादन क्षमता में वृद्धि करना। ii) इन फसलों की माँग में वृद्धि लाना तथा iii) विपणन रणनीति को मजबूत करना।

आइए, हम इन बिन्दुओं पर चर्चा करते हैंः–

उत्पाद क्षमता को बढ़ाना

अल्पदोहित फसलों की कम उपज तथा उत्पादन का मुख्य कारण है, इन फसलों की उन्नत उत्पादन तकनीकी का किसानों द्वारा अंगीकरण न करना। उत्पादन क्षमता बढ़ाने के कुछ तरीके इस प्रकार हैंः–

गुणवत्तायुक्त बीज उत्पादन में सहायता, छोटे एवं सीमांत किसानों को वित्तीय सहायता, पारंपरिक फसलों का प्रासंगिक मूल्य पर खरीद का आयोजन, ऐसी विपणन पहलों को समर्पण करना जिनमें कृषकों को आय का उच्च हिस्सा प्राप्त हो, इसके अतिरिक्त कृषकों के खेत में उन्नत उत्पादन तकनीकि के साथ अल्पदोहित फसलों के प्रदर्शन एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से अल्पदोहित फसलों के विकास के प्रयास आवश्यक हैं। यह कम उपज वाली स्थानीय किस्मों को बदलने तथा कृषकों के मध्य उन्नत किस्मों को लोकप्रिय बनाने में मदद करेंगे।

पारंपरिक फसलों की माँग को बढ़ावा देना

अल्पदोहित फसलों की माँग में वृद्धि करना सबसे बड़ी चुनौती है। अल्पदोहित फसलों के गुणों के बारे में आम जन में जागरूकता की कमी, इन फसलों की माँग में विस्तार इनके प्रचार–प्रसार के माध्यम से किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, इन फसलों के स्वास्थ्य लाभों के प्रति जागरूकता, मीडिया के माध्यम से प्रमोशन/प्रचार अभियानों के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है।

विपणन सम्पर्कों को मजबूत करना

एक सफल बाजार श्रृंखला वह है जो बाजार में एक संतोषजनक गुणवत्तायुक्त उत्पाद को एक उचित मूल्य पर लाने में सक्षम हो। अल्पदोहित फसलों के लिए बाजार को मजबूत करने के लिए विभिन्न रणनीतियों की आवश्यकता होती है।

विपणन मिक्स/मार्केटिंग मिक्स का प्रयोग

विपणन मिक्स से हमारा मतलब है कि कृषक/व्यक्ति या संगठन अपने उत्पादों को बेचने का प्रस्ताव कैसे करता है। विपणन मिक्स एकत्र करना विपणन कार्य का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है।

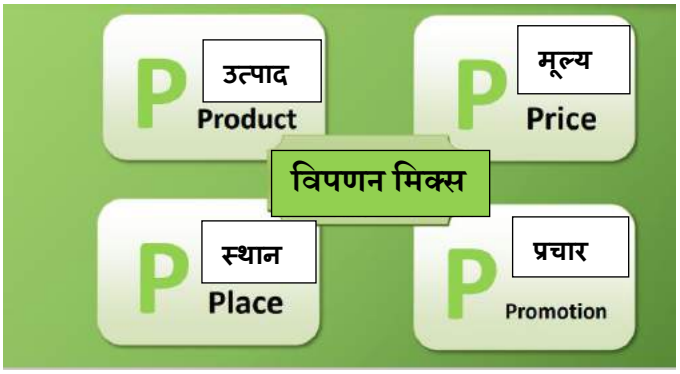

चित्र १ विपणन के चार स्तम्भ (4 **Ps** ऑफ मार्केटिंग)

*विपणन के चार स्तम्भ हैं (4 **Ps** ऑफ मार्केटिंग)*

उत्पादः आप क्या बेचते हैं। इसका मतलब यह समझना है कि प्रतियोगियों से अलग खड़े होने और ग्राहकों पर जीत हासिल करने के लिए आपके प्रस्ताव की क्या जरूरत है। दूसरे शब्दों में, क्या आपके उत्पाद को इतना अद्वितीय बनाता है। उत्पाद पर विचार करने के अनेक तरीके हैं। इसके लिए आपको सबसे पहले समझना होगा की आपके क्षेत्र या बाजार में किस उत्पाद की मांग है। इसके लिए बाजार का सर्वे करना आवश्यक है तथा एक रूपरेखा बनाने की आवश्यकता है कि अपनी फसल को आप किस उत्पाद के रूप में बेचना चाहेंगे। इसके लिए भी आपको आवश्यकता है यह देखने किः

- आपके पास उस उत्पाद को बनाने के लिए पर्याप्त संसाधन हैं ?
- क्या आपको उस उत्पाद के निर्माण का कौशल है ?
- उस उत्पाद को बनाने के लिए अगर आपको किसी संरचना या ढांचे की आवश्यकता है, तो उसके निर्माण के लिए पर्याप्त धन की व्यवस्था है ?
- अगर नहीं, तो आपको वह राशि किस प्रकार प्राप्त हो सकती है ?

- उत्पाद के प्रसंहस्करण के लिए मुख्य तकनीकी कहाँ से प्राप्त होगी तथा उसके लिए खर्च कहाँ से किया जाएगा?

सम्पूर्ण रूप से देखें तो हमें इसके लिए एक बिज़नेस प्लान की आवश्यकता होती है।

मूल्यः आप कितना शुल्क लेते हैं और यह कैसे प्रभावित करता है कि आपके ग्राहक आपके ब्रांड को कैसे देखते हैं। मूल्य सरल शब्दों में यह इस बात को संदर्भित करता है कि आप अपने उत्पाद के लिए कितना शुल्क लेते हैं। हालांकि यह समझने के लिए सरल है, पर वास्तव में सही कीमत निश्चित करना मुश्किल काम है । इसमें मूल्य इस तरह निर्धारित करना होता है ताकि लाभ भी हो तथा क्रेता इस मूल्य को देने पर राजी भी हों। कुछ सवाल आपको अपने आप से पूछना चाहिएः–

- सबसे कम कीमत क्या होगी जिसे आप अपने उत्पाद को बेचने के लिए तैयार हैं ?
- उपभोक्ताओं को भुगतान करने के लिए तैयार किया जाएगा कि उच्चतम कीमत क्या होगी ?
- कीमत के प्रति आपके ग्राहक कितने संवेदनशील हैं ?
- आपकी कीमत प्रतिस्पर्धा की तुलना कैसे करती है ?

स्थानः आप अपने उत्पाद या सेवा को कहाँ बढ़ावा देते हैं? आपके लक्षित ग्राहक आपके उद्योग के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए कहाँ जाते हैं? आपको एक स्थान चुनना होगा जहाँ आपके ग्राहक हैं। उनसे उम्मीद न करें कि वे आपके पास आएँ, आपको उनके पास जाना होगा।यहाँ अपने आप से पूछने के लिए कुछ सरल सवाल दिए गए हैं ताकि आप सही जगह पा सकें।

- आपका ग्राहक कहाँ है?
- कौन से आउटलेट (ऑनलाइन और ऑफलाइन) आपके उत्पाद को बेचते हैं?
- वर्तमान में आपके लिए कौन से वितरण चैनल काम कर रहे हैं?
- क्या आप सीधे व्यवसायों या उपभोक्ताओं को बेचते हैं?
- क्या आप सीधे अपने अन्तिम ग्राहक को बेचते हैं या आपको बिचौलियों से गुजरना पड़ता है?
- आपके प्रतिस्पर्धी कहाँ हैं?

प्रचार : आपके ग्राहकों को आपके बारे में कैसे पता चलता है? आप किन रणनीतियों का उपयोग करते हैं, और क्या वे प्रभावी हैं। इसका अर्थ है कि आप अपने उत्पाद को अच्छी तरह से कैसे बढ़ावा देते हैं? इसके लिए आप अपने आप से निम्नलिखित प्रश्न पूछकर शुरू करेंः

- आपके क्रेता जानकारी का उपभोग करने के लिए किन चैनलों का सबसे अधिक उपयोग करते हैं?
- आपके समाधानों को बढ़ावा देते समय किस तरह का संदेश अधिक प्रभावी होता है?
- आपके उत्पाद को बढ़ावा देने के लिए आदर्श अवधि क्या है?

- क्या मौसम को लेकर कोई चिंता है?
- आपके प्रतियोगी कैसे योजना बनाते हैं और उनके प्रचार को पूरा करते हैं?

विपणन चैनलों का चुनाव

अल्पदोहित फसलों के लिए सबसे आम विपणन चैनलों में से कुछ हैं:

- डायरेक्ट सेलिंग/सीधे क्रेताओं को अपना उत्पाद बेचना: इसका तात्पर्य बिचौलियों का उपयोग करने के बजाय ग्राहकों के साथ सीधे व्यवहार करके उत्पाद को बेचना है। पारम्परिक तरीकों में टेलीफोन पर बेचना, मेल ऑर्डर या डोर टू डोर सेलिंग शामिल है। हाल ही में ऑनलाइन शॉपिंग, टेलीमार्केटिंग आदि सहित और अधिक तरीके विकसित किए गये हैं।
- फसल को प्रसंस्करण इकाई में बेचना।
- सुपर मार्केट/रिटेल चैन से जुड़ाव।
- खुद के उत्पाद ब्रान्ड बनाकर बेचना।

बेहतर विपणन के घटक

अपने उत्पाद के बेहतर विपणन के लिए निम्नलिखित घटक आवश्यक हैं:

अ. ब्रांडिंग: उत्पाद की माँग का विस्तार करने के लिए एक उचित ब्रांडिंग रणनीति अपनाई जानी चाहिए। ब्रांड विकसित कर बाजार में पहुँच आसान हो जाती है। ब्राडिंग के मुद्दे हैं जो ध्यान में रखने आवश्यक हैं:

- इसमें सबसे पहला मुद्दा है– ब्रांड का नाम चयनित करना। चूंकि, अल्पदोहित फसलें पोशण युक्त हैं, इनके उत्पाद का नाम इस तरह चयन किया जाना चाहिए ताकि नाम ही उनके पोषण की गुणवत्ता एवं पोषण गुणों को चित्रित करे।
- नाम चयन करने के बाद ब्रांड का उचित पहचान स्थापित करना आवश्यक है। इसके लिए ब्रांड के नाम के साथ एक कच लाइन या आकर्षक पंक्ति या वाक्य चुना जाना चाहिए, जिससे ये पता लग सके कि इस उत्पाद के उपयोग से क्या–क्या फायदे होंगे। न्यूट्री–अनाज के रूप में अल्पदोहित फसलों को फिर से ब्रांडिंग करना आवश्यक है।
- अब ये निर्धारित करना होगा की उत्पाद किस वर्ग के लिए है। अगर ये उच्च आर्थिक स्थिति एवं शिक्षित जनमानस के लिए है, तो इसका प्रचार समाचार पत्र एवं मास मीडिया द्वारा किया जा सकता है । उत्पाद को इंटरनेट के माध्यम से भी प्रचारित किया जा सकता है । चूंकि अल्पदोहित फसलों के बारे में आम लोगों को कम पता रहता है, तो इसका प्रचार करने के लिए इसके उत्पाद की व्यंजन बनाकर भी प्रदर्शित किए जा सकते हैं या फिर इनकी व्यंजन पुस्तिका को संचार माध्यम से प्रचारित किया जा सकता है।
- अगर कम लागत के प्रचार का इस्तेमाल करना हो, तो दीवारों पर तस्वीर या पब्लिक परिवहन में इश्तिहार चिपका कर भी इसका प्रचार किया जा सकता है ।
- उपभोक्ता तक पहुँच बनाने के लिए इन अल्पदोहित फसल उत्पादों के ट्राइल पैक भी वितरित किए जा सकते हैं। साथ ही, अलपदोहित फसलों के पोषकगुणों पर एक प्रसार पत्र लीफलेट भी बनाकर वितरित किया जा सकता है ।

- प्रचार की कई तरह की सामग्री उपयोग में लाई जा सकती है जैसे बैनर, पम्पलेट, बैग जिन्हे वितरक या रीटेल दुकानदार को दिया जा सकता है ।
- उत्पादक या उत्पादक संगठन बड़े खुदरा व्यापारी जैसे रिलायंस, बिग बाजार, आदि से भी संपर्क कर सकते हैं तथा अपना उत्पाद इन में रख सकते हैं।
- उत्पाद विविधीकरण और ग्राहकों और डीलरों की प्रतिक्रिया के आधार पर उत्पादों के निरंतर सुधार एक नए उत्पाद के लिए ब्रांड के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण हैं।

ब. पैकेजिंगः पैकेजिंग का अर्थ है उत्पाद को साफ, शुद्ध एवं ताजा बनाए रखने हेतु पैकेट में रखना। इसके लिए निम्नलिखित बिन्दु पर ध्यान दिया जा सकता हैः

- अगर उत्पाद उच्च आर्थिक वर्ग के लिए बनाया गया है, तब पैकेजिंग का महत्व बहुत अधिक हो जाता है। अगर इन उत्पादों को स्वास्थ्य एवं पोषक उत्पादों के रूप में प्रचारित किया जाए तब पैकेट में कुछ महत्वपूर्ण संदेश लगाए जाने चाहिए। जैसे "कोई परिरक्षक नहीं जोड़ा गया" या "आर्टिफिशल रंग" का इस्तेमाल नहीं किया गया, आदि। इसके अतिरिक्त पैकेट में पोषण जानकारी एवं स्वास्थ्य के लिए लाभकारी गुण भी बताए जाने चाहिए।
- कुछ उत्पादों के पैकेजिंग में कुछ उपभोक्ता की पसन्द का ध्यान भी रखना चाहिए जैसे कुछ उत्पादों में पैकेट पारदर्शी रखें ताकि उपभोक्ता उत्पाद के रूप, प्रकार को देख पाएँ। इसी प्रकार पैकेट का आकार भी उत्पाद के अनुसार छोटा या बड़ा रखना चाहिए। उदाहरण के लिए, स्नैक्स के पैकेट छोटे रखें। छोटे पैकेट उपभोक्ता नए उत्पाद के लिए पसन्द करते हैं ताकि वो उसका स्वाद चख सकें।
- इसी प्रकार उत्पाद की शेल्फ लाइफ को ध्यान में रखकर पैकेट का चुनाव करें। जैसे किन्ही उत्पादों में वैक्युम पैकिंग की जाती है तथा किन्ही उत्पादों में सादी पैकिंग मान्य होती है।
- अगर उत्पाद में पर्यावरण के अनुकूल पैकिंग की जाए, तो उससे विशेषकर पोषक उत्पाद का मूल्य एवं मांग बढ़ती है।
- जितना हो सके, पैकेजिंग को आकर्षक बनाएँ। पैकिंग डिजाइन को हल्के पृष्ठभूमि और गहरे रंग लिखने के साथ आकर्षक और स्पष्ट करने की आवश्यकता है। इससे पैकेट पर मौजूद कंटेंट की पठनीयता बढ़ेगी।

स. लेबलिंग कम प्रचलित एवं नए उत्पाद के लिए बाजार बनाने के लिए लेबलिंग का विशेष महत्व है। लेबलिंग करते समय निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान में रखें

- उत्पाद का शुद्ध भार, उत्पाद का मूल्य
- निर्माण की तिथि, समाप्ति तारीख, उत्पाद के लाभ।
- उपयोग का तरीका।
- उत्पाद के सेहत के लिए लाभ जिसे की हाइलाइटेड किया गया हो।
- हर जानकारी को स्थानीय भाषा में भी लिखें।

- अगर उत्पादक कोई अन्य उत्पाद भी बनाता हो, तो उसकी जानकारी भी अवश्य लिखें ।
- लेबल में फोटो, सर्टिफिकेशन लोगो, ब्रांड लोगो, उत्पाद का नाम, व्यंजन की जानकारी, संपर्क का पता अवश्य लिखें ।

द. विज्ञापनः विज्ञापनों का विज्ञापन से पुरजोर सम्बन्ध है। यह विपणन संचार का एक रूप है जिसके माध्यम से ग्राहकों को एक ब्राण्ड या उत्पाद की अधिक खरीद और खरीदने के लिए राजी किया जाता है। आप इसके लिए सोशल मीडिया का उपयोग कर सकते हैं। मोबाइल क्रान्ति का युग है, इसका उपयोग आप अपने उत्पाद के प्रचार–प्रसार के लिए कर सकते हैं। सोशल मीडिया पर अनेक प्रचार–प्रसार के प्लेटफॉर्म है, जैसे– व्हाट्सएप , फेसबुक , ट्विटर , इंस्टाग्राम , आदि।

सामूहिक स्तर पर उत्पाद का विपणनः सामूहिक कार्रवाई और बाजार में इसकी भूमिका

किसानों के लिए सबसे उपयुक्त एवं सफल विपणन माध्यम हैंः

- कलेक्टिव एक्शन : समूह द्वारा विपणनः उत्पादक समूह ऐसे व्यक्तियों का समूह जो किसी एक गतिविधि से जुड़ा हो एवं एक समान उत्पाद का उत्पादन करते हों एवं उनकी एक समान मूलभूत आवश्यकताऐं हो । समूह द्वारा विपणन एवं उत्पादन को बढ़ावा दिया जा सकता है। साथ ही अलपदोहित फसल उत्पादों के व्यापार में सम्मिलित चैनल को छोटा कर किसानों को अधिक लाभ प्रदान किया जा सकता है। स्वयं सहायता समूह मॉडल के अंतर्गत किसान अपना समूह बनाकर अल्पदोहित फसलों को इकठ्ठा कर सकते हैं, एक अन्य समूह फसल का प्रसंस्करण कर सकता है तथा अन्य समूह इनका मूल्य संवर्धन कर सकता है। स्वयं सहायता समूह ग्राम स्तर पर कार्य करते हैं। अल्पदोहित फसलों के लिए आपूर्ति बाजार श्रृंखला में तीन प्रमुख प्रकार के समूह शामिल किये जा सकते हैंः 1) किसानों से फसल खरीदने के लिए एक प्रथम समूह 2) छिलका उतारने और प्रसंस्करण के प्रभारी एक दूसरे समूह और 3) खुदरा विक्रेताओं को उत्पाद भेजने से पहले मूल्य वर्धन पैकेजिंग का ख्याल रखने के लिए स्वयं सहायता समूहों का एक तीसरा सेट।
- एफ पी ओ द्वारा विपणन : उत्पादकों, विशेष रूप से छोटे एवं सीमांत किसानों का उत्पादक संगठनों में समूहीकरण सबसे कारगर तरीकों में से एक है। यह कृषि से जुड़ी अनेक चुनौतियों का सामना करने तथा निवेश, प्रौद्योगिकी एवं आदान तथा बाजार तक पहुंच में सुधार के लिए भी एक अत्यंत प्रभावी तरीका बन कर उभरा है। कृषि और सहकारिता विभाग, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार ने कंपनी अधिनियम, 1956 के विशेष प्रावधानों के अंतर्गत पंजीकृत किसान उत्पादक संगठनों को सबसे उपयुक्त संस्थानिक स्वरूप के रूप में चिह्नित किया है जिसके इर्दगिर्द किसानों को संगठित किया जाएगा तथा उनकी उत्पादन एवं विपणन क्षमता का सामूहिक रूप से लाभ उठाने के लिए उनकी क्षमता निर्मित की जाएगी।

कृषकों के समूह संगठन बनाकर जिले स्तर पर उत्पादन से लेकर विपणन तक का कार्य कर अलपदोहित फसलों की मूल्य श्रृंखला स्थापित कर सकते हैं। एफ पी ओ (कृषक उत्पादन संगठन) को सरकार द्वारा काफी प्रोत्साहित किया जा रहा है। विभिन्न कृषि एवं संबद्ध उत्पादों तथा पदार्थों से संबंधित संपूर्ण मूल्य श्रृंखला का प्रबंधन करने की जरूरत होती है। (चित्र २)

एफ पी ओ सेवा प्रतिरूप

एफपीओ अपने सदस्यों को कई तरह की सेवाएं प्रदान करता है। उल्लेखनीय है कि यह अपने सदस्यों को लगभग शुरू से अंत तक सेवाएं प्रदान करता है, जिसके अंतर्गत खेती के लगभग सभी पहलू (उत्पादक सामग्री, तकनीकी सेवाओं से लेकर प्रसंस्करण एवं विपणन तक) शामिल हैं। एफपीओ आपूर्ति एवं मांग में समन्वय स्थापित करने तथा बाजार सूचना, उत्पादक सामग्री की आपूर्ति, तथा परिवहन सेवा जैसी प्रमुख कारोबार विकास सेवाओं तक पहुंच प्राप्त करने के लिए किसानों, संसाधकों, व्यापारियों तथा फुटकर विक्रेताओं के बीच संबंध स्थापित करने में सुविधा प्रदान करेंगे। उभरती आवश्यकताओं के आधार पर, एफपीओ समय–समय पर नई सेवाओं को शामिल करना जारी रखेंगे। सेवाओं के समूह में वित्तीय, कारोबार तथा कल्याण से जुड़ी सेवाएं शामिल होती हैं।

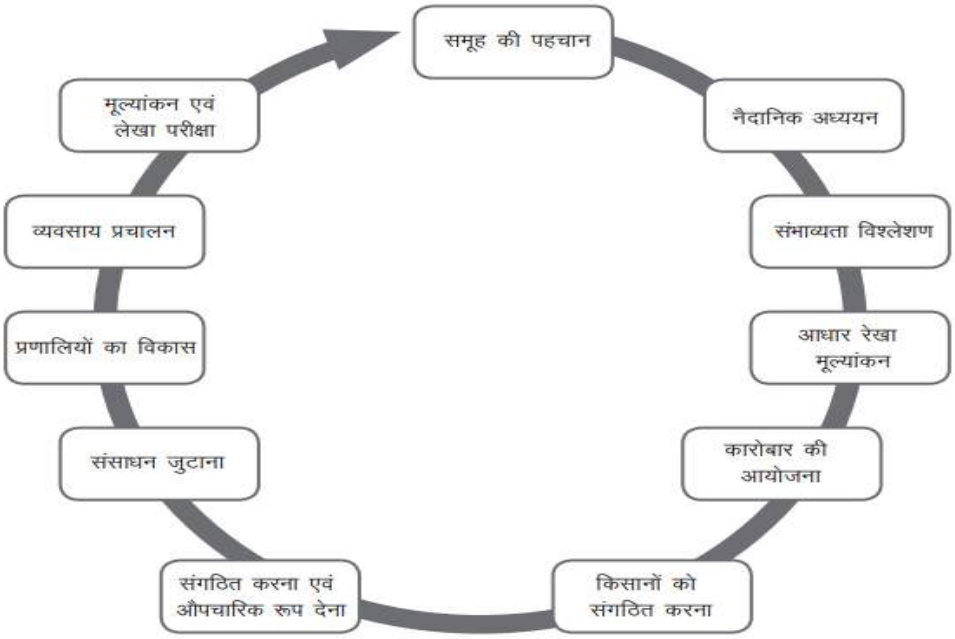

चित्र 2 एफपीओ के संवर्धन तथा विकास की प्रक्रिया **(**स्रोतः नाबार्ड)

सामूहिक स्तर पर उत्पाद का विपणन की कार्रवाई को संचालित करने के लिए इच्छा शक्ति, प्रेरणा, या प्रोत्साहन 2) ऐसा करने की क्षमता और 3) एक रणनीति या कार्य योजना की अत्यंत आवश्यकता है। यह वैचारिक ढांचा व्यक्तिगत या समूह कार्यों पर लागू किया जा सकता है।

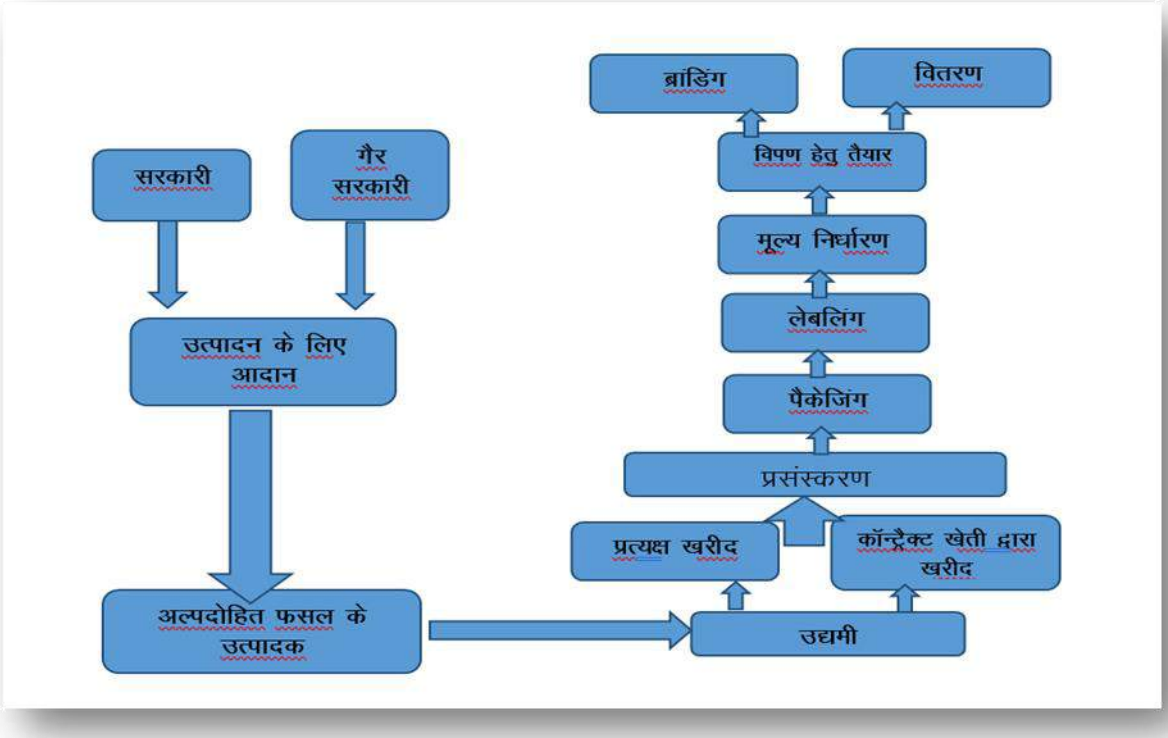

चित्र 3 अल्पदोहित फसलों के विपणन के लिए एसएचजी आधारित मॉडल ; स्रोतः **MSSRF)**

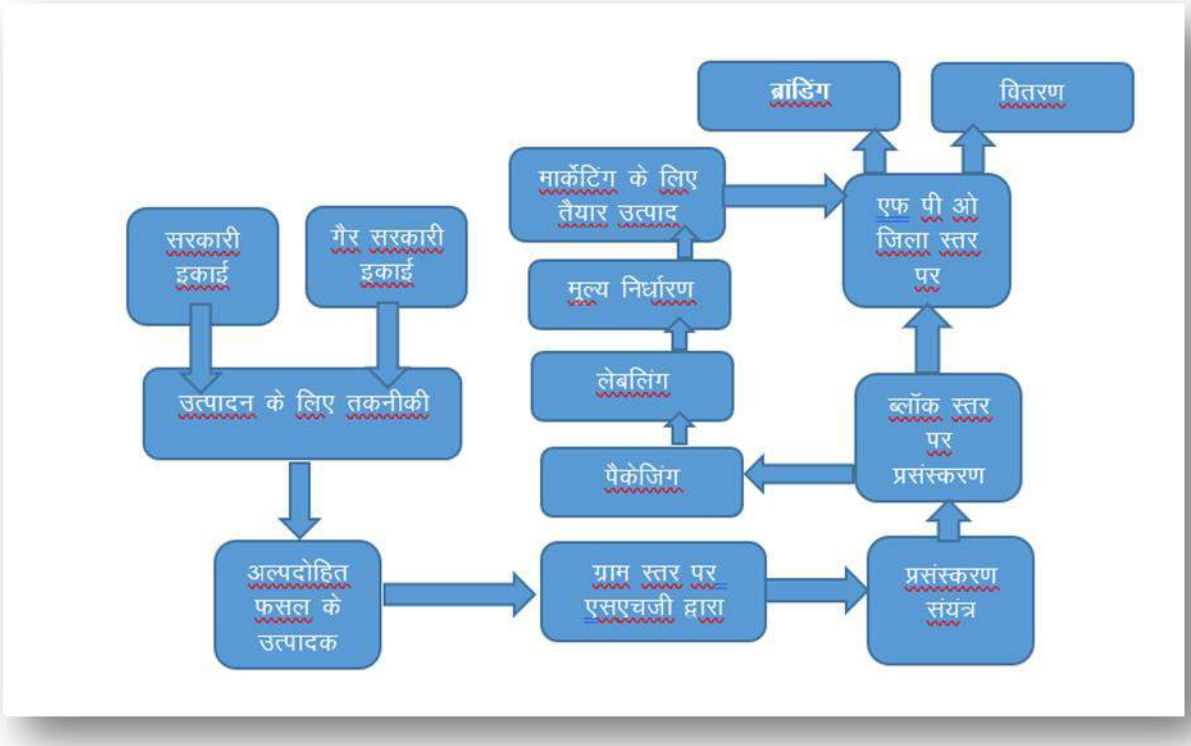

चित्र 4 अल्पदोहित फसलों के विपणन के लिए उद्यमिता आधारित मॉडल

समूह से विपणन के फायदे

- एक ही स्थान पर उत्पाद का थोक करने के लिए संग्रह ताकि उपज की मात्रा प्राप्त की जा सके और व्यापारी किसान के स्थान पर जाने के लिए आकर्षित होंगे ।
- यदि उचित योजना और प्रबंधन किया जाता है तो नियमित आपूर्ति संभव है ।
- यदि अनुबंध खेती, समझौतों आदि जैसी प्रथाओं को किया जाता है तो मूल्य में उतार–चढ़ाव का प्रबंधन किया जा सकता है।
- मूल्य, मात्रा और दूसरों के बारे में जानकारी के प्रसार के लिए संचार में आसान ।
- बड़े परिवहन का उपयोग करके सभी आवश्यक आदानों की खरीद करके उत्पादन लागत को कम किया जा सकता है ।
- विपणन लागत को कम करने के लिए उत्पाद और परिवहन का संग्रह ।
- गारंटी के रूप में समूह के साथ जमानत के बिना निधि तक पहुँच ।
- सरकार और दानदाताओं द्वारा धन और अन्य सहायता सेवाओं की आसान पहुंच ।
- यदि बड़ी योजनाओं की कल्पना की जाती है तो सदस्यों से अधिक धन एकत्र किया जा सकता है ।
- फसल के बाद नुकसान को कम किया जा सकता है।
- प्रसंस्करण कंपनी से क्षमता निर्माण और प्रशिक्षण का प्रावधान।
- सौदेबाजी की शक्ति में सुधार।

समूहों और सहकारी समितियों के सफल प्रबंधन के लिए विचार किए जाने वाले बिंदु

- सहकारी समितियों और समूहों के सफल प्रबंधन के लिए एक सक्षम प्रबंधक की आवश्यकता है। सक्षम प्रबंधक की भर्ती की जानी चाहिए और नियमित रूप से व्यापार संचालन के सफल संचालन के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।
- सहकारिता को नेटवर्किंग करनी चाहिए और अन्य सहकारी समितियों के साथ समन्वय स्थापित करना चाहिए। लागत को कम करने और बाजार का विस्तार करने के लिए कुछ समान गतिविधियां एक साथ की जाएंगी।
- सहकारिता को बाजार की जानकारी के साथ खुद को अपडेट करने में सक्षम होना चाहिए।
- विपणन योजना तैयार करने और गतिविधियों को लागू करने में सक्षम होना चाहिए।
- गतिविधियों, जिम्मेदारी और नकद लेनदेन में पारदर्शिता होनी चाहिए।
- लेखांकन, परिसंपत्ति, आदि का उचित प्रबंधन और सभी सदस्यों के मध्य उचित संचार होना चाहिए ।
- प्रगति और उपलब्धियों की नियमित निगरानी होनी चाहिए।

विपणन रणनीति का सफल उदाहरण : HOPCOMS (हॉपकॉमस) सोसायटी मॉडल

HOPCOMS को ' बैंगलोर अंगूर उत्पादकों' कोऑपरेटिव मार्केटिंग एंड प्रोसेसिंग सोसाइटी लिमिटेड (BGGCOM) के रूप में स्थापित किया गया था। 10 सितंबर, 1959 में आवश्यक जानकारी, तकनीकी जानकारी, विपणन सुविधाएं प्रदान करके अंगूर की खेती को प्रोत्साहित करने के मुख्य उद्देश्य के साथ सोसायटी ने अंगूर के अलावा फल और सब्जियों को संभालना शुरू किया 1965 से।

1. फलों और सब्जियों की खरीद

सोसायटी बागवानों से फल और सब्जियां खरीदती है (सदस्यों के साथ–साथ गैर–सदस्य) और खुले बाजार, जैसा कि नीचे चर्चा की गई है:

(क) कृषकों से आपूर्ति

(अ) प्रधान कार्यालय/शाखा पर आपूर्ति : प्रधान कार्यालय/शाखा में आपूर्तिः आसपास के स्थानों पर उत्पादक अपने उत्पाद अपने स्तर पर उत्पाद प्रधान कार्यालय या शाखा तक लाते हैं। बागवानों को इसके लिए सोसायटी से मांगपत्र लेना होगा। फलों और सब्जियों की आपूर्ति और, सामान्य रूप से, अधिक उत्पादन पर इंडेंट की मात्रा स्वीकार नहीं की जाएगी।

(ब) खरीद केंद्रों पर आपूर्तिः 1970 के दशक के दौरान, मुश्किल से ३५ से ४० प्रतिशत फल और सब्जियों की खरीद खेत से होती थी। । हालांकि, 80 के दशक में, HOPCOMS की नीति में बदलाव किया गया, खरीद केंद्रों की मदद से वर्तमान में, सोसायटी लगभग ८५ प्रतिशत फल एवं सब्जियां सीधे बागवानों से खरीदती है ।

(ख) बाजार से खरीदः सरकारी अस्पतालों, छात्रावासों जैसे थोक खरीदारों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए स्थानीय बाजारों से उपज का एक हिस्सा भी खरीदा जाता है, फैक्ट्रियां आदि। औसतन सोसायटी को 3 रुपए प्रति किलो का नुकसान होता है। सोसायटी बाज़ार से करीब १५–२० फीसदी फल और सब्जी खरीदता है।

(ग) अन्य राज्यों से आपूर्तिः उत्पादकों और बाजार से खरीद के अलावा, HOPCOMS अन्य राज्यों से भी कम मात्रा में उपज खरीदता है।

(घ) फलों और सब्जियों की ग्रेडिंगः हालांकि HOPCOMS ग्रेड में फल और सब्जियों को वर्गीकृत नहीं करता है, सोसायटी का दावा है कि उत्पादकों से केवल अच्छी गुणवत्ता वाली उपज स्वीकार करके यह फलों की गुणवत्ता बनाए रखता है और यह क्षतिग्रस्त और रोगग्रस्त को खारिज करता है।

(ङ) इंडेंट सिस्टम : सोसायटी 'इंडेंट सिस्टम' का पालन करता है, जिसका उसने उपयोग उत्पादकों से फल और सब्जियों की खरीदने में 70 के दशक में भी किया। इस प्रणाली, कोई संदेह नहीं है, आपूर्ति को विनियमित करने में मांग के आधार पर सोसायटी की मदद करता है । वास्तव में, यह समझा जाता है कि उपज का निपटान सोसायटी की प्रमुख समस्या है और इससे बचने के लिए HOPCOMS ने इस प्रणाली का उपयोग किया।

2. खुदरा दुकानों के माध्यम से उपज का निपटान – बिक्री

हॉपकॉम के पास 8 जिलों में फैले 256 रिटेल आउटलेट्स का अच्छा नेटवर्क है। सोसायटी से 37 फीसदी कमीशन पाने वाले सोसायटी के सेल्समैन इन आउटलेट्स को चलाते हैं।

थोक खरीदारों को बिक्रीः HOPCOM सब्जियां और फलों की आपूर्ति क्रेडिट आधार पर करता है और यह 40–50 पैसे प्रति किलो अधिक चार्ज करता है । प्रोसेसर के मामले में, सब्जियों की कीमत में परिवहन लागत को जोड़ा जाता है।

रिटेल आउटलेट्स को बिक्रीः हॉपकॉम के पास 8 जिलों में फैले 256 रिटेल आउटलेट्स का अच्छा नेटवर्क है। सोसायटी के सेल्समैन को 3.7 फीसदी कमीशन मिलता है। सोसायटी इन आउटलेट्स को चलाती है।

उत्पादन से संबंधित गतिविधियाँ

HOPCOMS एक उचित मूल्य पर फल और सब्जी उत्पादकों के लिए सब्जी बीज, उर्वरक, पीपीसी (कवकनाशक और कीटनाशकों) और बगीचे उपकरणों की तरह उत्पादन आवश्यकताओं की आपूर्ति करता है । यह देखा जा सकता है कि इनपुट हॉपकॉम की कुल बिक्री का 8–10 प्रतिशत है।

प्रक्रिया गतिविधिः HOPCOMS द्वारा अंगूर, आम, नारंगी, सेब आदि से रस तैयारी किया जाता है जो बंगलोर, मैसूर और मंगलौर शाखाओं में खुदरा दुकानों में 200 मिलीलीटर बोतलों में बेच जाता है।

पर्वतीय कृषि में कटाई उपरान्त प्रौद्योगिकी एवं प्रसंस्करण केन्द्र की प्रत्याक्षिक जानकारी

शेर सिंह, श्याम नाथ, जितेन्द्र कुमार, हितेश बिजारणिया एवं जयदीप कुमार बिष्ट

भाकृअनुप–वि.प.कृ.अनु.सं, अल्मोड़ा, उत्तराखण्ड

खाद्यान्न, सब्जियों और फलों में फसल के बाद के नुकसान को कम करना, उत्पादकता बढ़ाने, उनकी उपलब्धता और लाभप्रदता के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए महत्वपूर्ण है। कटाई के बाद की हैंडलिंग प्रणाली के समुचित उपयोग की उत्तराखंड राज्य के पर्वतीय क्षेत्रों में काफी संभावनाएं हैं, जो अब तक कटाई के बाद की तकनीकों को अपनाने से उपेक्षित और अलग– अलग रही हैं। हालांकि किसान फसल कटाई के बाद की गतिविधियों के दौरान होने वाले नुकसानों के बारे में सामान्य रूप से जानते हैं, लेकिन वे सिस्टम के हिस्से के रूप में ऐसे नुकसानों को स्वीकार करते हैं। एक बार कटाई के बाद पोस्ट हार्वेस्ट प्रौद्योगिकियों से फसल की गुणवत्ता में सुधार नहीं होता है अपितु केवल फसलों के खराब होने की दर धीमी होती है। फलों और सब्जियों को धोने, छांटने और आकार देने जैसे अभ्यास उपभोक्ता के लिए सेवाएं हैं और आमतौर पर अंतर्निहित गुणवत्ता और शेल्फ जीवन में सुधार नहीं करते हैं। पहाड़ी लोगों को बेहतर गुणवत्ता वाले प्रसंस्कृत उत्पाद प्रदान करने की महती आवश्यकता है। उत्तराखंड की पहाड़ियों में, कुल खेती योग्य क्षेत्र का लगभग 90 प्रतिशत वर्षा सिंचित क्षेत्र है और उपज का स्तर बहुत कम है। क्षेत्र स्तर पर खाद्य फसलों का प्रसंस्करण न केवल आगे के नुकसान को रोकेगा बल्कि स्थानीय लोगों को रोजगार भी प्रदान करेगा। वर्तमान में पहाड़ियों में, पारंपरिक तरीकों के माध्यम से विभिन्न कृषि उत्पादों का प्रसंस्करण हाथ से किया जा रहा है, जिसमें न केवल बहुत समय लगता है, बल्कि किसानों की, विशेष रूप से महिला किसानों की बहुत मेहनत लगती है। उपरोक्त बिंदुओं को ध्यान में रखते हुए, आईसीएआर–वीपीकेएएस, अल्मोड़ा स्थान और फसल विशिष्ट पोस्ट–फसल प्रौद्योगिकियों और उपयुक्त उपकरण जैसे वी0,एल0 पैडी/धान थ्रेशर, विवेक मिलेट थ्रेशर–कम–पर्लर, वी0,एल0 सोलर ड्रायर, वी0एल0 पैडल चलित चारा काटने की मशीन, वी0,एल0 चारा ब्लॉक मशीन, को विकसित किया है जिससे मूल्यवर्धन एवं कटाई के बाद के नुकसान में कमी होती है।

वी0 एल0 पैडी/धान थ्रेशर

इस मशीन का उपयोग उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में धान की मढ़ाई हेतु किया जाता है। यह मानव व शक्ति द्वारा चलाया जाता है। धान की मढ़ाई मुख्यतः मानव द्वारा डण्डे से पीटकर तथा पैरों द्वारा मसलकर की जाती है। जिससे श्रमिकों के समय का ह्रास होता है तथा पैरों में नुकीले धान चुभने की आशंका बनी रहती है। वी0एल0 पैडी थ्रेशर पर्वतीय क्षेत्रों में सीमान्त तथा छोटे किसानों के लिये बहुत लाभदायक है। इस मशीन को दो आदमियों द्वारा पकड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से स्थानांतरित किया जा सकता है।

विवेक मिलेट थ्रैशर–कम–पर्लर

इस मशीन का उपयोग मंडुवा एवं मादिरा की गहाई एवं छिलका/भूसा हटाने हेतु किया जाता है। परम्परागत तरीकों से गहाई करने पर उसकी गहाई क्षमता एवं कार्य कुशलता बहुत कम मिलती है, तथा श्रम का अत्यधिक प्रयोग होता है परन्तु इस मशीन का उपयोग करने पर गहाई क्षमता व कार्य कुशलता अत्यधिक है। इस मशीन की निर्गत क्षमता– थ्रेशिंग क्षमता (विद्युत मोटर चलित)– 40–60 किग्रा दाना प्रति घण्टा व छिलका हटाने की क्षमता– 2.5 से 4 किग्रा दाना प्रति घण्टा। इस मशीन का मूल्य 24500 (विद्युत मोटर चलित) है।

वी.एल.सोलर ड्रायर

पर्वतीय क्षेत्रों में विभिन्न कृषि उत्पाद, तथा खाद्य पदार्थों को अधिकतर खुले में सुखाया जाता है। कृषि उत्पाद/खाद्य पदार्थो के पारम्परिक विधि से सुखाते समय पक्षियों, कीटों, बन्दरों एवं अप्रत्याशित वर्षा से काफी नुकसान होता है तथा वर्तमान समय में बन्दरों का आतंक अत्यधिक बढ़ने के कारण यह नुकसान बहुत अधिक हो गया है। इस समस्या के समाधान हेतु भाकृअनुप – विवेकानन्द पर्वतीय कृषि अनुसंधान संस्थान ने अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना – कृषि संरचना और पर्यावरण पर्यावरण प्रबन्धन में प्लास्टिक अभियांत्रिकी (ए.आ.सी.आर.पी. ऑन पी.ई.ए.एस.ई.एम) के अन्तर्गत 'वी. एल. सोलर ड्रायर' विकसित किया है। सोलर ड्रायर एक ऐसी प्रणाली है जो सौर ऊर्जा के उपयोग से विशेष रूप से खाद्य पदार्थों को सुखाती है । अच्छी बात यह है कि इसमें बिजली आपूर्ति की आवश्यकता नहीं होती।सोलर ड्रायर के ऊपरी हिस्से पर सोलर चालित निकास पंखा (एग्ज्हौस्ट फेन) लगा हुआ है ड्रायर में तीन छिद्रित ट्रे (निचला, मध्य, तथा ऊपरी) है, जोकि लकड़ी और 40 मेस स्टेनलेस स्टील नेट से बने हुए हैं। इस ड्रायर का उपयोग कृषि सामग्री/उत्पाद/खाद्यों एवं गीले प्रसंस्कृत खाद्य सामग्री जैसे कि बड़ीयां, अनाज, मशरूम, मेथी की पत्तियॉ आदि को सुखाने के लिए किया जाता है। यह ड्रायर उन सीमान्त एवं गरीब किसानों के लिए बहुत उपयोगी होगा जो अपने कृषि उत्पादों के परीरक्षण हेतु हाईटैक सुविधाएं एवं उपकरण नहीं जुटा पाते हैं। सुखाये गये उत्पाद को किसान बेमौसम में ऊँचे कीमतों पर बेच सकते है। इसका उपयोग मौसम में बादलीय स्थिति को छोड़कर पूरे वर्ष में किया जा सकता है। किसानों के साथ–साथ यह घरेलू प्रयोग के लिए भी काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है, क्योंकि पारम्परिक विधि की तुलना में इसमें खाद्य सामग्री को सूखने में काफी कम समय (दो से तीन दिन) लगता है जबकि घूप में

सुखाने में सात से आठ दिन लग जाते हैं। सोलर ड्रायर में खाद्य पदार्थों का स्वाद, रंग, सुगंध, महक एवं पोषकता कायम/बनी रहती है। इसके परिचालन एवं रख–रखाव का खर्च ना के बराबर है। जिनकी क्षमता सामग्री अनुसार 5 से 20 किलोग्राम प्रति बैच है।

वी0 एल0 पैडल चलित चारा काटने की मशीन

इस मशीन का उपयोग सूखा व हरा चारा काटने के लिये हेतु किया जाता है। पर्वतीय क्षेत्रों में सर्दियों के समय गुणवत्तायुक्त की अत्यधिक कमी, बिना कटे चारा एवं भूसा को खिलाने से होने वाली बर्बादी एवं बिजली में बार – बार होने वाली कटौती को ध्यान में रखते हुए एक पैडल चालित चारा काटन की मशीन विकसित की गई है। परम्परागत चारा काटने की मशीन मे दो व्यक्तियों की आश्यकता होती है परन्तु वी0 एल0 पैडल चलित चारा काटने की मषीन में एक ही व्यक्ति की आवष्यकता होती है जो व्यक्ति मशीन चलाता है वही व्यक्ति चारा को हॉपर में डालने का कार्य भी करता है। इस मशीन की हरे चारे काटने की निर्गम क्षमता 170 किग्रा प्रति घण्टा है तथा सूखे चारे काटने की निर्गम क्षमता 30 किग्रा प्रति घण्टा है।

कृषि प्रसंस्करण केन्द्र

अन्न, दलहन, तिलहन, फल, सब्जी, मत्स्य, दूध, माँस आदि में कटाई या उत्पादन उपरान्त होने वाली क्षति में कमी लाने तथा मूल्य वर्धन करने की प्रक्रिया है। ग्रामीण स्तर पर लाभप्रद ढंग से कृषि प्रसंस्करण निम्नलिखित रुपों में किया जा सकता हैः अन्न प्रसंस्करण, दलहन प्रसंस्करण, तिलहन प्रसंस्करण, मसाला प्रसंस्करण, आदि। कृषि प्रसंस्करण के उपरान्त प्राप्त होने वाले प्रसंस्कृत पदार्थ हैं – आटा, चावल, दाल, बेसन, दलिया, मसाला पाउडर, पशु चारा इत्यादि।

सामान्य प्रक्रिया के अन्तर्गत कृषि प्रसंस्करण के चरण हैं।

कृषि उत्पाद / कच्चा माल ⟹ सफाई ⟹ वर्गीकरण ⟹ सुखाना ⟹ भण्डारण ⟹प्रसंस्करण (प्रसंस्कृत पदार्थ) ⟹ बाजार

कृषि प्रसंस्करण केन्द्र पर कृषि उत्पाद प्रसंस्करण हेतु आवश्यक सामग्री व सुविधाऐं उपलब्ध होती हैं। कृषि प्रसंस्करण केन्द्र की स्थापना ग्रामीण स्तर पर खाद्यान्नों का प्रसंस्करण एवं मूल्य संवर्धन कर कृषकों की आय में वृद्धि के उद्देश्य से की जाती है। यह एक प्रतिष्ठान है जहाँ अन्न, दलहन, तिलहन, मसाले, फल एवं सब्जियों के प्रसंस्करण, भण्डारण एवं सुखाने के लिए आवश्यक सुविधाऐं उपलब्ध होती हैं। प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थों को सावधानी पूर्वक पैक कर विशिष्ट ब्राण्ड के नाम से विपणित किया जाता है।

उपयोग में आने वाले प्रमुख कृषि प्रसंस्करण यंत्र

- अनाज सफाई और वर्गीकरण यंत्र
- अनाज भंडारण (बोरे, धातु–बर्तन, सीमेंट के कोठार, पक्की कोठियॉ इत्यादि)
- आटा–चक्की
- धान कुटाई यंत्र (प्लर्स कम शेलर्स, पॉलिशर्स)
- तिलहन पेराई यंत्र
- मसाला पिसाई यंत्र
- उत्पाद तोलने का यंत्र

कृषि प्रसंस्करण केन्द्र स्थापित करने से पूर्व कई बातों का ध्यान रखना पड़ता है जैसे कि स्थान का चयन, कृषि प्रसंस्करण यंत्र का चयन, परिवहन, प्रशिक्षण, पूँजी, अनुमानित लागत आदि। अखिल भारतीय समन्वित अनुसंधान परियोजना, (कटाई उपरान्त प्रौद्योगिकी), सीफेट लुधियाना के सहयोगी केन्द्रों द्वारा स्थापित विभिन्न कृषि–प्रसंस्करण केन्द्रों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि रुपये 80,000/– से 4,00,000/– की लागत द्वारा लगभग रुपये 6,000/– से 20,000/ रुपये प्रति माह तक आय प्राप्त की जा सकती है। प्रत्येक कृषि प्रसंस्करण केन्द्र में 2 से 6 व्यक्तियों को रोजगार के अवसर भी मिल सकते हैं। कृषि प्रसंस्करण केन्द्र, गाँव या उसके आस–पास के क्षेत्र के क्लस्टर में उपलब्ध उत्पाद की विक्रयता बढाकर कृषि उत्पाद के लिए अतिरिक्त मूल्य बनाता है। आमतौर पर फसल कटाई के उपरान्त अधिकांशतः प्रसंस्करण हेतु फसल उत्पाद को शहरी क्षेत्रों तक पहुँचाया जाता है जिससे इसमें बर्बादी से होने वाले नुकसान के अलावा, परिवहन और भण्डारण की लागत भी कृषक को उठानी पड़ती है। फसल प्रसंस्करण एवं भण्डारण की सुविधाऐं गाँव में या उसके आस–पास के क्षेत्र में होने के कारण फसल कटाई के उपरान्त होने वाले नुकसान से बचा जा सकता है। गाँवों में ही फसल के प्राथमिक एवं माध्यमिक प्रसंस्करण की सुविधा उपलब्ध होने पर प्रसंस्कृत सामग्री की मूल्य भी कम हो जाते हैं तथा कृषकों में उद्यमिता का विकास भी किया जा सकता है।

- ये केन्द्र ग्रामीणों को उनके कृषि उत्पादों का पूरा लाभ प्राप्त करने में सहायता करते हैं।
- ये केन्द्र ग्रामीण स्तर पर उच्च गुणवत्ता के प्रसंस्कृत पदार्थ उचित मूल्य पर उपलब्ध कराते हैं।
- प्रसंस्करण यंत्रों से अच्छी तरह वर्गीकृत उत्पाद या पदार्थ तैयार होते हैं, जो अपेक्षाकृत बेहतर मूल्य प्रदान करते हैं और इससे यंत्रों की कार्य क्षमता में वृद्धि होती है।
- प्रसंस्करण से कृषि उत्पाद का रख–रखाव अधिक समय तक किया जा सकता है, जो उचित यातायात की कमी से होने वाले नुकसान से भी बचाता है।

पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि प्रसंस्करण केन्द्रों की उपयोगिता विशेष है। कृषि प्रसंस्करण केन्द्रों को बढ़ावा देकर कृषकों की आय में वृद्धि एवं कटाई उपरान्त तकनीकों में होने वाले कठिन श्रम को कम कर युवा कृषकों को खेती की ओर आकर्षित करके गाँवों

से शहरों की ओर युवाओं के पलायन को कम किया जा सकता है। अतः खाद्य पदार्थों का प्रसंस्करण करके उनके मूल्य की वृद्वि की जाये तो न केवल किसानों व महिलाओं को फायदा मिलेगा बल्कि वे आत्मनिर्भर होकर बेरोजगारी की समस्या से भी छुटकारा पा सकेंगे।